TEXT FLY
WITHIN THE
BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180944
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H82/G72D Accession No. G.H. 509

Author गोविन्ददास।

Title दुःख क्यों। 1946

This book should be returned on or before the date last marked below.

दुःख क्यों ?

लेखक

सेठ गोविन्ददास

अनेक नाटकों के रचयिता

१९४६

प्रकाशक

गयाप्रसाद एण्ड संस, आगरा

मूल्य २॥)

मुद्रक—मगनकृष्ण दीक्षित, दीक्षित प्रेस, इलाहाबाद।

पहला अंक

स्थान—यशपाल के मकान का कमरा

समय—संध्या

[कमरा मध्यम श्रेणी के लोगों के कमरों से सदृश साधारण रूप से सजा है। तीन ओर दीवालें दीखती हैं, जो सफ़ेद कलई से पुती हैं। बीच की दीवाल में केवल एक खिड़की है और दोनों ओर की दीवालों में एक-एक दरवाज़ा। खिड़की और दरवाज़ों के किवाड़ों में काँच लगे हैं। खिड़की बन्द है और दरवाज़े खुले। खिड़की के काँचों में से बाहर की पहाड़ियाँ और आकाश दिखायी देता है और दरवाज़ों से दूसरे छोटे-छोटे कमरों के हिस्से। पहाड़ियाँ और आकाश डूबते हुए सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित हैं। कमरे की छत पर लकड़ी का

सीलिंग है और फ़र्श पर चटाई। बीच की दीवाल की खिड़की के दोनों तरफ़ दो काँच के किवाड़ों की आलमारियाँ रखी हुई हैं। इसमें क़ानून की किताबें हैं। कमरे के बीच में एक बड़ी-सी गोल टेबिल है और इसके चारों ओर बेंत से बुनी हुई चार कुर्सियाँ। बाईं तरफ़ के दरवाज़े के एक ओर लिखने की मेज है; उस पर लिखने का सामान सजा है और एक टाइमपीस घड़ी रखी है। इस टेबिल के सम्मुख बेंत से बुनी एक ऊँची-सी कुरसी है; कुरसी पर एक चौकोर तकिया पड़ा है। इसी दरवाज़े के दूसरी ओर एक छोटा-सा कालीन बिछा है और उस पर छोटा-सा मसनद रखा है। इस कालीन के सामने लिखने का एक डेस्क है। यह कालीन वकील साहब के मुंशी के बैठने का स्थान जान पड़ता है। दाहिनी तरफ़ के दरवाज़े के एक ओर कपड़े टाँगने की खूँटी का स्टेंड लगा है और दूसरी ओर बड़ा-सा शीशा। सुखदा एक कुर्सी पर बैठी हुई कुछ सोच रही है। उसके मुख से प्रसन्नता टपकी पड़ती है। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि वह प्रसन्नता की मूर्त्तिमती प्रतिमा ही दीखती है। उसकी अवस्था लगभग तीस वर्ष की है। वह गौर वर्ण और गठीले शरीर की अत्यन्त सुन्दर स्त्री है। काली चौड़ी किनारी की सफ़ेद सूती साड़ी और इधर-उधर झालर आदि लगा हुआ शलूका पहने है। कान में सोने से 'ईयररिंग', नाक में सोने की कील, गले में सोने का पतला 'नेकलेस' और हाथों में सोने के पतले-पतले कड़े, तथा काँच की दो-दो चूड़ियाँ हैं। पैरों में वह चाँदी के छड़े पहने हैं। लम्बे बाल सुन्दरता से सँवारे हुए है। माँग में सेंदुर है और मस्तक पर ईंगुर की टिकली।]

सुखदा—(उठकर टेबिल पर की घड़ी देख ज़ोर-से) रामदेई, ओ रामदेई !

[बाईं तरफ़ के दरवाज़े से एक प्रौढ़ावस्था की साँवली-सी स्त्री का प्रवेश । यह सफ़ेद साड़ी और हाथों में मोटे-मोटे चाँदी के कड़े पहने है ।]

सुखदा—(कुरसी पर बैठते हुए) देख तो, रामदेई, अभी तक वकील साहब नहीं आये ।

रामदेई—पर अभी तो बखत नहीं हुआ, मालकिन ।

सुखदा—हाँ, लेकिन आज जल्दी आने को कह गये थे ।

रामदेई—तभी आपने कचहरी चाह नहीं भेजी ।

सुखदा—हाँ तभी तो । ठीक वक्त उन्होंने चाह न पी तो मुँह सूख जायगा । पता तो लगा, क्यों नहीं आये ? आज कुछ अखिल भारतीय नेता आने वाले थे; उस झगड़े में तो नहीं पड़ गये हैं ?

रामदेई—हाँ, यह हो सकता है, क्योंकि ऐसे झगड़ों में उन्हें बखत का खयाल ही नहीं रहता । मैं यह चली ।

[रामदेई दाहिनी ओर के दरवाज़े से जाना चाहती है, इतने ही में उसी द्वार से यशपाल का प्रवेश । यशपाल की उम्र क़रीब तैंतीस साल की है । वह गौर वर्ण का सुन्दर साधारणतया ऊँचा, किन्तु दुबला मनुष्य है । छोटी-छोटी मूँछें हैं । कोट,

पतलून और बूट पहने है। गले में टाई लगाये है और सिर पर फ़ेल्ट कैप। हाथ में एक छोटा-सा 'ब्रीफ़बैग' लिये है। आते ही वह उसे टेबिल पर रख देता है। रामदेई बाईं तरफ़ के दरवाज़े से बाहर चली जाती है।]

सुखदा—(उठकर आगे बढ़ अत्यन्त प्रसन्नता से) अन्त में तुमने देर कर ही दी। देखो, शीशे में मुँह तो देखो।

[खींच कर शीशे के सामने ले जाने का प्रयत्न करती है।]

यशपाल—(कुछ रुखाई से) क्यों, हुआ क्या ? कई दफ़ा तुम्हारा इस प्रकार का व्यवहार आनन्द पहुँचाने की जगह डंक-सा मारता है।

सुखदा—(उसकी रुखाई के कारण रुककर) चाह बिना पिये मुँह कैसा उतर गया है! अगर जल्दी न आ सकते थे तो पहले से कह देते, चाह कचहरी भेज देती।

यशपाल—पर मुझे कचहरी में देर नहीं हुई। (आगे बढ़कर बीच की टेबिल के निकट की कुरसी पर बैठ जाता है।)

सुखदा—(दूसरी कुरसी पर बैठते हुए) फिर कहाँ हुई ? क्या तुम भी नेताओं के चक्कर में पड़ गये थे ?

यशपाल—नहीं, नहीं, बाज़ार चला गया था। ब्रज-बल्लभ और शकुन्तला के लिए गेंदें लानी थीं न ?

सुखदा—अच्छा। (कुछ ठहर कर) तो फिर चाह मँगवाऊँ ?

यशपाल—हाँ, मैं तैयार हूँ।

[सुखदा बाईं ओर के द्वार से बाहर जाती है। यशपाल लम्बी साँस ले उठकर टोपी और कोट उतार खूँटी पर टाँगता है। शीशे में मुँह देखकर, रूमाल से उसे पोंछ, पुनः कुरसी पर आकर बैठता है। सुखदा का प्रवेश। एक बड़ी-सी रकाबी में चाह के चीनी के बर्तन लिये रामदेई आती है। एक चीनी की रकाबी में टिकियाँ भी हैं। रामदेई रकाबी को टेबिल पर रखकर पुनः बाहर चली जाती है। सुखदा निकट की कुरसी पर बैठ चाहदानी से प्याले में चाह डालती है। आगे के संभाषण में दोनों चाह भी पीते जाते हैं और बातें भी करते जाते हैं।]

सुखदा—(यशपाल के मुँह को एकटक देखते हुए) आज तुम बहुत ही उदास दीख पड़ते हो।

यशपाल—तुमने कहा न कि चाह पीने में देर हो गयी, इसीलिए मुँह उतर गया है।

सुखदा—सो तो है ही, पर इसके सिवा उदासी का और भी कोई सबब होना चाहिए।

यशपाल—क्यों, क्या यह कारण काफ़ी नहीं है ?

सुखदा—नहीं, आज तुम जिस तरह उदास हो, उसके लिए इतना कारण यथेष्ट नहीं है।

यशपाल—और तो कोई सबब नहीं है।

सुखदा—(सिर उठाकर यशपाल की ओर प्रेमपूर्वक देखती हुई) और कोई कारण नहीं है ?

यशपाल—(रूखी मुस्कराहट से) कोई नहीं।

सुखदा—यह हो ही नहीं सकता। जब-जब मैंने तुम्हें इस तरह उदास देखा है, और कहा है कि आज तुम्हारे उदास होने का कोई ख़ास कारण है, तब-तब कोई न कोई सबब ज़रूर निकला है। (गिड़गिड़ाते हुए) क्यों, मुझको भी अपनी उदासी का कारण न बताओगे ?

यशपाल—(लंबी साँस लेकर) तुमसे मैं कोई बात छिपाऊँ, यह कैसे हो सकता है ? फिर जब तुम छिपाने दो तब न ?

सुखदा—(चाह पीना छोड़, उठकर, यशपाल की कुरसी के निकट जा, यशपाल की ठुड्डी में हाथ लगा, सिर हिलाते हुए) तो फिर बताओ।

यशपाल—बताऊँगा, ज़रूर बताऊँगा। पर तुमने चाह पीना क्यों छोड़ दिया ? चाह तो पियो, नहीं तो वह ठंडी हो जायगी।

सुखदा—तुम्हारी उदासी देख कर चाह मेरे गले के नीचे ही नहीं उतरती, तुम उदासी का सबब बताओ, तब पिऊँगी।

यशपाल—जब तक तुम चाह न पीने लगोगी, मैं न बताऊँगा।

सुखदा—(पुनः अपनी कुरसी पर बैठती हुई) अच्छी बात है; तुम्हारी ही जीत सही। लो, चाह पीती हूँ अब तो बताओ। (पुनः चाह पीना शुरू करती है।)

यशपाल—(लंबी साँस लेकर) देखो, मैं इस जीवन से ही निराश हो गया हूँ; यथार्थ मैं तो यही सबब है; और क्या बताऊँ ? तुम देखती हो कि कई दफ़ा मैं इसी तरह उदास हो जाता हूँ और अब यह उदासी दिन प्रति दिन बढ़ती ही जाती है।

सुखदा—(घबरा कर) हाँ, इन दिनों तुम कुछ ज्यादा उदास रहने लगे हो, यह सत्य है; लेकिन जीवन से ही तुम निराश हो गये हो, यह तो तुमने अजीब बात कही। मेरे रहते, दो-दो गुलाब के फूल के सदृश बच्चों के रहते, ऐसे सुखी गृह-जीवन के रहते, तुम जीवन से उदास हो गये हो, यह कैसी बात है ! यह सुनकर तो मेरा जी ही उड़ा जा रहा है।

यशपाल—तुम्हारे और बच्चों के कारण मेरा गृह-जीवन अत्यंत सुखी है, यह मैं मानता हूँ, लेकिन तुम जानती हो कि मनुष्य को गृह-जीवन के अतिरिक्त और भी किसी चीज़ की ज़रूरत होती है।

सुखदा—कैसी ?

यशपाल—तुम्हारे सदृश विदुषी, और सिर्फ़ घर में ही न रहने वाली, किन्तु सामाजिक जीवन में घूमने-फिरने वाली, महिला को भी यह बनाने की आवश्यकता है ?

सुखदा—समझी; अर्थात् सार्वजनिक जीवन की।

यशपाल—जरूर, और उसमें मुझे थोड़ी सी भी सफलता नहीं मिल रही है।

सुखदा—यह तो मैं नहीं मानती। म्युनिस्पैल्टी के तुम मेम्बर हो गये, डिस्ट्रक्ट बोर्ड के वाइस प्रेसीडेन्ट हो। पाँच वर्षों से ही तुमने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया और यह सफलता कुछ कम है? यदि लोगों के उपकार का सच्चा लक्ष्य, और आगे बढ़ने से ज्यादा उपकार कर सकूँगा, यही भावना रखोगे तो धीरे-धीरे और आगे बढ़ जाओगे।

यशपाल—यह सफलता? यह सफलता कुछ भी नहीं है। दूसरों को देखो, एक-एक छलाँग में ही कहाँ पहुँच गये! पंडित मोतीलाल नेहरू ने कांग्रेस की पंजाब की जाँच कमिटी में जरा-सा काम किया और अमृतसर कांग्रेस के सभापति हो गये। चित्तरंजनदास का कितना नाम हो गया है! उन्होंने अगर कलकत्ते की स्पेशल कांग्रेस के वक्त वकालत छोड़ने की घोषणा कर दी होती तो वे ही आगामी नागपुर कांग्रेस के सभापति चुने जाते। अब भी यदि वे असहयोग के साथ हो गये तो अगली कांग्रेस के सभापति हो जायँगे। मैं अपने में इनसे कम बुद्धि नहीं समझता। यह अलग बात है कि मुझमें छल-छंद नहीं है, अतः मेरी वकालत अब तक इन लोगों के समान नहीं चमक सकी। यद्यपि ये बातें किसी दूसरे के सामने नहीं कही जा सकतीं, लेकिन तुम्हारे सामने तो मैं सभी कुछ कह सकता हूँ।

सुखदा—हाँ, हाँ, मेरे सामने ही यदि तुम सब कुछ नहीं कह सकते तो किसने सामने कह सकते हो ? किन्तु क्या तुम समझते हो कि पंडित मोतीलाल नेहरू और चित्तरंजनदास इन ज़रा-ज़रा सी बातों के कारण इस प्रकार बढ़ गये ? कांग्रेस की पंजाब की जाँच कमिटी के बहुत पूर्व पंडित जी ने देश के कार्यों में भाग लेकर अपने बहुमूल्य समय और धन का त्याग किया है। कलकत्ता कांग्रेस के पूर्व वे जिस शाही ढंग से रहते थे उसमें एकाएक सर्वथा परिवर्तन कर अपनी इतनी बड़ी वकालत को लात मार देना क्या थोड़ा त्याग है ? चित्तरंजनदास का तो सारा जीवन ही देश-सेवा में बीता है। बंगाल के गाँव-गाँव में उनका दान पहुँचा है और अगणित क्षुधित-दलित और रुग्णों को उससे असीम लाभ हुए हैं।

यशपाल—हाँ, यह सब मैं भी मानता हूँ, लेकिन जो देशभक्ति इन लोगों के इन कार्यों की नीव है, वह मुझमें किसी की अपेक्षा कम है, यह भी मैं नहीं मानता।

सुखदा—यह कौन कहता है ?

यशपाल—पर ऐसी बुद्धि और देशभक्ति का उपयोग ही क्या, अगर कोई इस बुद्धि और इस देश-भक्ति को नहीं जानता। फिर अब तक मुझे जो सफलता मिली है, वह भी दूसरों के आश्रय से।

सुखदा—कैसे ?

यशपाल—यदि ब्रह्मदत्त वकील मेरे पक्ष में म्युनिस्पल मेंबरी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की वाइस प्रेसीडेन्टी की उम्मीदवारी से न हट गये होते तो मैं कदापि न चुना जाता।

सुखदा—यह कहना तो कठिन है।

यशपाल—नहीं यह निश्चय है। ब्रह्मदत्त कितना शैतान है, यह तुम नहीं जानतीं, क्योंकि तुम तो सबको देवतावत् मानती हो। मुझ पर हर तरह का अहसान लादना उसका उद्देश्य है; इसलिए इस म्युनिस्पैल्टी की मेम्बरी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की वाइस प्रेसीडेंटी से मुझे दुख ही रहता है। दुर्भाग्य से मैं गरीब के घर पैदा हुआ और पढ़ने के लिए उससे छात्रवृत्ति लेनी पड़ी। दुर्भाग्य से मैं संसार में उसके बाद आया, अतः उसका वकालत एवं उसका सार्वजनिक जीवन मेरे पहले शुरू हो गया और इस सम्बन्ध में भी उसे मुझ पर अहसान लादने का मौका मिल गया।

सुखदा—परन्तु तुम समझे हो कि तुम पर अहसान लादने को ही वे तुम्हारे पक्ष में बैठे थे ? ?

यशपाल—इसमें ज़रा-सा भी शक नहीं है। वह म्युनिसिपल मेम्बरी है और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की वाइस प्रेसीडेन्टी के लिए खड़ा हो इसलिए हुआ था कि उसे मेरे पक्ष में बैठ जाने का अवसर मिल जाय। वह तो म्युनिस्पैलटी का प्रेसीडेन्ट होना चाहता था, सो हो गया। ऐसे आदमी का मेम्बरी के लिए खड़े होने का और क्या

उद्देश्य हो सकता है ? ओह ! उसने जो सहायताएँ मुझे दी हैं, वे हमेशा मेरे सिर पर नाचा करती हैं। जब मैं उसे देखता हूँ, अपने प्रति उत्साहवर्धक ढंग से उसकी बातें सुनता हूँ तो मेरा ख़ून खौलने लगता है। आज सुना है कि वह कौंसिल के लिए खड़ा हो रहा है और अगर चुन लिया गया तो मिनिस्टर हो जायगा। सच तो यह है कि उस बदज़ात ब्रह्मदत्त की इस बढ़ती हुई स्थिति को देखकर ही मुझे अपना जीवन भार-स्वरूप हो गया है। जब तक उसकी सारी प्रतिष्ठा और कीर्ति मिट्टी में न मिल जायगी, तब तक मुझे शान्ति नहीं मिल सकती।

सुखदा—(चौंककर) आज तुम कैसी···कैसी बातें कर रहे हो ? किसी दूसरे की प्रतिष्ठा और कीर्ति को मिट्टी में मिलाये बिना तुम्हें शान्ति न मिलेगी ? किसी के उपकार से शान्ति मिलती है या अपकार से ?

यशपाल—दुखी और संतप्तों के उपकार से शान्ति मिलती है और इस प्रकार के दुष्टों के अपकार से।

सुखदा—मैंने तो अब तक बिना किसी तरह के भेद-भाव के उपकार ही को शान्ति का रास्ता समझा था। दुनियाँ में जिनका अपकार होना चाहिए, उसका भगवान कर देते हैं, मनुष्य को इस प्रकार न्यायाधीश बनने का कोई अधिकार नहीं है।

यशपाल—(घृणा से मुसकरा कर) तुम घर के बाहर तो निकलीं, पर फिर भी बाहर को समझी नहीं। किसी

की दो मीठी बातें सुनते ही तुम उसे संसार में सब से भला आदमी समझने लगती हो, किसी के दो करुण शब्द सुनते ही उसे सब से बड़ा दुखी मान लेती हो और उसका दुख निवारण करने के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार हो जाती हो। तुम नहीं जानतीं कि यह संसार कैसे लुच्चों और धूर्तों से भरा हुआ है। यह रंगभूमि नहीं, रणभूमि है। (सुखदा काँप उठती है। उसका काँपना देखकर) मैं जानता हूँ, तुम्हें ऐसी बातों के सुनने मात्र से बड़ा कष्ट होता है, क्योंकि तुम्हारा हृदय अत्यन्त कोमल है; इसीलिए मैं तुम्हारे सामने कभी ऐसी बातों की चर्चा ही नहीं करता, पर आज मौक़ा आ गया, क्योंकि आज मैं एक बहुत बड़ा कार्य करने की बात सोच रहा हूँ।

सुखदा—कैसा ?

यशपाल—अगर मैं असहयोगी होकर वकालत छोड़ दूँ तो एक ही छलाँग में ब्रह्मदत्त से कहीं आगे बढ़ जाऊँगा, क्योंकि वह कभी वकालत न छोड़ेगा, इसका मुझे विश्वास है।

सुखदा—(चौंककर) असहयोगी यदि तुम देश की सच्ची भलाई के लिए होते तो मैं समझ सकती थी, लेकिन ब्रह्मदत्त जी को नीचे गिराने के लिए असहयोगी होना तो मेरी समझ में नहीं आता।

यशपाल—मैंने कहा कि तुम दुनियाँ को समझती

ही नहीं। जिसे ऊँचा चढ़ना होता है, उसे अन्यों के सिर काट उन मुन्डों की सीढ़ी बना उस पर से चढ़ना पड़ता है।

सुखदा—(फिर चौंककर) यदि ऊपर चढ़ने के लिए और कोई रास्ता नहीं है तो नीचे ही रहना अच्छा है। (कुछ ठहर कर) और वकालत छोड़ने पर कुटुम्ब का निर्वाह कैसे होगा ?

यशपाल—अभी मैं कितना कमाता हूँ ? सौ सवा सौ रुपया महीना ही न ?

सुखदा—हाँ।

यशपाल—मैंने विश्वासनीय सूत्र से सुना है कि अगली काँग्रेस के अवसर पर सेठ जमनालाल बजाज एक लाख रुपया काँग्रेस को इसलिए देनेवाले हैं कि जिन वकीलों ने वकालत छोड़ी है, उनके निर्वाह के लिए हरेक को सौ रुपया माहवार दिया जाय। (चाह पीना बन्द कर रूमाल से मुँह पोंछता है।)

सुखदा—और अगर सेठ जमनालाल बजाज ने रुपया न दिया तो ?

यशपाल—तो थोड़ा-बहुत खर्च घटाकर दोस्तों से सहायता ले लूँगा।

सुखदा—लेकिन खर्च कौन-सा घट सकता है ?

यशपाल—क्यों, एक तो बच्चों के मास्टर को दस रुपया

माहवार दिया जाता है, वही बन्द हो सकता है, मैं बच्चों को पढ़ा लूँगा।

सुखदा—तुमको समय मिल जायगा ?

यशपाल—वकालत छोड़ने के बाद भी वक्त न मिलेगा ? अभी भी तो वे स्कूल में पढ़ते हैं, और मास्टर उन्हें घर पर दो घंटे ही पढ़ाता है; दो घंटे मैं सहज में निकाल लूँगा।

सुखदा—लेकिन अगर तुम असहयोगी हुए तब तो बच्चों को स्कूल से निकालना होगा।

यशपाल—यह नागपुर कांग्रेस के बाद देखा जायगा। फिर बारह रुपया माहवार का नौकर घट सकता है। हम दोनों अपना-अपना काम अपने हाथ से कर लेंगे और झाड़ू देना, बर्तन माँजना आदि महरी कर लेगी।

सुखदा—परन्तु यदि तुम जेल गये तो मैं कैसे जिऊँगी, यह भी सोचा है ? (आँखों में आँसू भर कर) कचहरी या म्यूनिस्पल कमिटी आदि की मीटिङ्ग से लौटने में ही जब तुम्हें विलम्ब हो जाता है तो मेरा बुरा हाल हो जाता है, फिर तो···

[दाहिनी ओर के दरवाज़े से शीघ्रतापूर्वक चन्द्रभान का प्रवेश। वह ३५ वर्ष की अवस्था का साँवला, ठिंगना और दुबला आदमी है। कोट और पतलून पहने है, पर टाई नहीं लगाये। सिर पर फैल्ट कैप है।]

चन्द्रभान—ज़बर्दस्त जुलूस, ज़ोर का जय-जयकार, ग़ज़ब के गजरे !

यशपाल—तो नेता लोग आ गये ?

चन्द्रभान—हाँ, तीन-तीन !

यशपाल—कहाँ गये हैं ?

चन्द्रभान—गांधी चौक। महती सभा।

यशपाल—सभा हो गयी ?

चन्द्रभान—दो के भाषण।

यशपाल—तो अभी हो रही है ? कितनी देर और चलेगी ?

चन्द्रभान—आधा घंटा।

यशपाल—(कुछ सोचकर, सुखदा से) मैं भी ज़रा सभा का तमाशा देख आऊँ ?

सुखदा—अच्छी बात है, मैं भी चलूँ ?

यशपाल—(कुछ सोचते हुए) नहीं, अब तुम न चलो। तुम चलोगी तो मंच तक जाना पड़ेगा और देर हो जायगी। मैं दूर से ही सभा देख कर लौट आता हूँ। साइकिल पर जाऊँगा। अभी दस मिनट में आजाऊँगा। (खूँटी के निकट जाकर टोपी लगाता और कोट पहन दरवाज़े

की तरफ़ बढ़ता है। जाते-जाते रुक कर, कोट की जेब से दो छोटी-छोटी गेंदें निकाल) हाँ, ब्रजवल्लभ और शकुन्तला स्कूल से आते ही होंगे। ये गेंदें उन्हें दे देना।

[सुखदा गेंदें ले लेती है। यशपाल और चन्द्रभान का दाहिनी ओर से प्रस्थान। सुखदा लम्बी साँस लेकर, गेंदों को जेब में रख, बेचैन-सी इधर-उधर घूमने लगती है।]

सुखदा—(घूमते-घूमते) रामदेई, ओ रामदेई !

[बाँई तरफ़ के द्वार से रामदेई का प्रवेश।]

रामदेई—अच्छा, वकील साहब कहीं बाहर चले गये ?

सुखदा—हाँ, आज अखिल भारतीय नेता आये हैं; उन्हीं की सभा देखने गये हैं।

रामदेई—आप नहीं गयीं, मालकिन ?

सुखदा—मुझे नहीं ले गये। कह गये हैं, अभी आते हैं। (कुछ ठहर कर) रामदेई, न जाने क्यों आज मेरे मन में यह बात उठ रही है कि अब अपने घर का सुख चला जायगा।

रामदेई—(आश्चर्य से) क्या कहती हो, मालकिन ?

सुखदा—(आँखों में आँसू भर कर) मुझे ऐसा ही लगता है, रामदेई।

रामदेई—आपको वे सभा में नहीं ले गये इसीलिए आपको ऐसा जान पड़ता होगा।

सुखदा—नहीं, नहीं, रामदेई, यह बात नहीं है; यह तो बहुत छोटी सी बात है। (**एक कुरसी पर बैठते हुए**) रामदेई, तू मेरे पास बारह वर्ष से है न ?

रामदेई—हाँ, मालकिन, बारह वर्ष हो गये।

सुखदा—मेरे विवाह के एक साल बाद तू नौकर रही थी।

रामदेई—हाँ, एक बरस बाद।

सुखदा—तू बैठ जा, रामदेई। (रामदेई कुरसी के निकट ज़मीन पर बैठ जाती है।) और इन बारह वर्षों में मैं तुझसे हमेशा यही कहती रही न कि मेरे समान सुखी और कोई स्त्री न होगी।

रामदेई—हाँ, मालकिन, यही कहती रहीं।

सुखदा—तुझे याद है, रामदेई, आठ वर्ष पर्व जब शकुन्तला हुई थी, तब मुझे कितना हर्ष हुआ था, जैसे संसार भर की निधि मुझे मिल गयी हो।

रामदेई—खूब अच्छी तरह याद है।

सुखदा—और पाँच साल पहले जब ब्रजवल्लभ हुआ, उस समय के मेरे आनन्द का तुझे स्मरण है ? उस वक्त भी मुझे ऐसा जान पड़ता था न कि जैसे मुझे त्रिलोकी का राज्य मिल गया है ?

रामदेई—वह भी अच्छी तरह याद है, मालकिन।

सुखदा—वकील साहब की हर तरह से सेवा-सुश्रूषा करने और बच्चों को पालने-पोसने में मुझे कितना सुख मिलता है ?

रामदेई—रोज़ ही देखती हूँ, जितना जादा से जादा किसी को मिल सकता है ।

सुखदा—क्यों, रामदेई, मैंने कभी किसी को कोई कष्ट तो नहीं दिया ?

रामदेई—अरे ! राम, राम ! क्या कहती हो, मालकिन, मैं तो आपकी नौकरनी हूँ, मुझे तक आपने कभी आधी बात नहीं कही ।

सुखदा—रामदेई, मेरे पास कोई बड़ी भारी धन-माया नहीं है, पर जब कोई भी याचक यहाँ आया, तब मुट्ठी भर अन्न और गज भर कपड़ा देने से मैं कभी न चूकी ।

रामदेई—कभी नहीं ।

सुखदा—और वकील साहब से भी सदा छल-छंद के मुक़दमों से दूर रह कर सत्य मार्ग पर चलने तथा सब का भला करने का ही अनुरोध करती रही ।

रामदेई—हाँ, मालकिन, यह भी मुझे मालूम है ।

सुखदा—मेरे और इस घर के इस सब सुख का एक ही कारण था ।

रामदेई—क्या ?

सुखदा—किसी का अपकार करने का विचार तक न

लाना; लेकिन, रामदेई, आज इस घर में दूसरे का अपकार करने की बात घुसी है। इस पाप से इस घर का सब सुख नष्ट हो जायगा। (सिसक-सिसक कर रोने लगती है।)

रामदेई—(घबरा कर) मालकिन, मालकिन, आपको आज क्या हो गया है, क्या हो गया है ? क्या कुछ मालिक कह गये हैं ?

सुखदा—(कुछ ठहर कर और भर्राए हुए स्वर में) नहीं, नहीं, उन्होंने मुझे कुछ नहीं कहा; आधी बात भी नहीं। उन्होंने तो मुझे हमेशा आँखों की पुतली के समान रखा है, परन्तु उन्हें उसके अपकार करने की बात सूझी है, जिसने उनका न जाने कितना भला किया है।

रामदेई—किस का मालकिन ?

सुखदा—ब्रह्मदत्त वकील का।

रामदेई—(आश्चर्य से) अच्छा ! कैसे ?

सुखदा—किसी तरह भी ब्रह्मदत्त को नीचा दिखाना। रामदेई, तू मेरी नौकरानी नहीं, सखी के समान रही है। मैंने तुझसे कभी कोई बात नहीं छिपायी। यह बात किसी से कहना नहीं।

रामदेई—आज तक जो बात कभी मुझसे नहीं हुई वह अब कैसे होगी, मालकिन ?

सुखदा—नहीं, मुझे तुझ पर संदेह नहीं है। इसलिए मैंने तुझसे कह दिया कि भूल से भी बात मुँह से न

निकल जाय। (कुछ ठहर कर) कह, रामदेई, अब क्या करना चाहिए ?

रामदेई—कुछ नहीं, उन्हें समझाइए। आपको तो मैंने कभी ऐसा दुखी नहीं देखा।

सुखदा—दुखी ! मैं तो सदा से सुखी रही हूँ, रामदेई, पर अब मैं सुखी नहीं रहूँगी; तुझसे कहती हूँ, कभी नहीं रहूँगी। देख, रामदेई, प्रत्येक मनुष्य का जीवन किसी न किसी प्रकार की नींव पर स्थित रहता है। मेरे जीवन की नींव ही सरक गयी है, फिर सुख कहाँ ? वे मेरा कहा मानेंगे, इसके आसार ही नहीं दिखते। इस घर पर दुःख का कोई बड़ा भारी पहाड़ टूटने वाला है। इस गृह का सारा मधुर संगीत फूटे ढोल का शब्द हो जायगा। ग़रीबदास जी वैद्य, जिन्हें मैं अपने गुरुदेव के समान मानती हूँ, हमेशा कहते हैं कि जिस घर में किसी के अपकार की बात सोची जाती है, वह घर कभी सुखी रह ही नहीं सकता। ग़रीबदास जी की हरेक बात सच होती है, यह भी सच होकर रहेगी। (कुछ ठहर कर) अच्छा, यह टेबिल तो साफ़ कर दे।

रामदेई—(उठ कर) बहुत अच्छा। पर, मालकिन, मैं तो आपकी हालत देखकर घबरा गयी हूँ। (टेबिल साफ़ कर चाह के सामान सहित रकाबी उठती है।)

सुखदा—अभी क्या हुआ है, रामदेई, तू तो अभी बहुत घबड़ायगी। (लंबी साँस छोड़ती है।)

रामदेई—(रकाबी उठाये हुए) नहीं, मालकिन···

सुखदा—अच्छा, अच्छा, इसे साफ़ कर दे, तब आ।

[रामदेई रकाबी लेकर बाईं ओर के द्वार से जाती है। सुखदा फिर उठ कर शीशे के सामने जा अपना मुख देखती है। उसके फिर आँसू आ जाते हैं। वह रूमाल से आँखें पोंछती है और एक लम्बी साँस छोड़ इधर-उधर टहलती है। दाहिनी ओर के दरवाज़े से एक अधेड़ अवस्था के नौकर के साथ शकुन्तला और ब्रजवल्लभ का प्रवेश। दोनों गौर वर्ण के हैं। शकुन्तला की अवस्था लगभग ८ वर्ष और ब्रजवल्लभ की ५ साल की है। शकुन्तला फ्राक तथा चड्ढी पहने है, ब्रजवल्लभ कोट और हाफ़पैंट। दोनों अपने-अपने बस्ते लिये हैं। दोनों बच्चे बस्तों को टेबिल पर रख, दौड़ कर, एक, एक ओर से, और दूसरा, दूसरी तरफ़ से सुखदा को पकड़ लेते हैं।]

सुखदा—(आँखों में आँसू भर कर) आ गयी, शकुन्तला, आ गया, ब्रज! आज तुम लोगों ने देर लगायी।

ब्रजवल्लभ—मैं तो जल्दी आ जाता, अम्मा, पर इसकी छुट्टी ही नहीं हुई।

शकुन्तला—हाँ, अम्मा, आज मेरे स्कूल में इन्स-पैक्ट्रेस आयी थीं; छुट्टी से देर हुई; पर फिर रास्ते में इसी ने देर की।

सुखदा—कैसे ?

ब्रजवल्लभ—अम्मा, एक बड़ा भारी बरात जा रही थी, उसे देखने को थोड़ी देर ठहर गया।

[नौकर धीरे से सुखदा से कुछ कहता है ।]

सुखदा—अच्छा किया, बेटा, देख लिया । क्यों, कैसी बरात थी ?

ब्रजवल्लभ—कुछ नहीं, अम्मा, ऐसी ही थी । हाथी, घोड़े, ऊँट, बाजा कुछ नहीं थे । फुलवारी भी नहीं थी । हाँ, दूल्हे एक की जगह तीन थे, गहना वग़ैरह कुछ नहीं । बरात के साथ आदमी बहुत थे ।

[शकुन्तला खिलखिला कर हँस पड़ती है ।]

ब्रजवल्लभ—(कुछ गम्भीर होकर) अम्मा, यह न जाने क्यों हँसती है । जब मैं कहता हूँ कि बरात अच्छी नहीं थी, तभी यह हँसती है ।

सुखदा—बेटा, वह साधारण बरात नहीं थी ।

ब्रजवल्लभ—(आश्चर्य से) तब क्या था ?

सुखदा—नेताओं की बरात ।

ब्रजवल्लभ—तो नेताओं के ब्याह में हाथी, घोड़े, ऊँट, बाजा नहीं जाते; वे गहना नहीं पहनते; और तीन-तीन का साथ ब्याह होता है ?

[शकुन्तला फिर खिलखिला कर हँस पड़ती है । सुखदा और नौकर भी हँसने लगते हैं ।]

सुखदा—नेता विवाह करने थोड़े ही आये हैं, बेटा ।

ब्रजवल्लभ—फिर बरात क्यों निकली थी ?

सुखदा—बरात नहीं थी, बेटा जुलूस था ।

ब्रजवल्लभ—जुलूस क्या होता है ?

सुखदा—जुलूस क्या होता है ? (कुछ सोचते हुए) जुलूस ? जुलूस एक प्रकार की बरात ही होती है, पर उसमें विवाह नहीं होता।

ब्रजवल्लभ—फिर क्या होता है ?

सुखदा—कुछ नहीं, बेटा, जहाँ नेता जाते हैं वहाँ उनका सम्मान करने के लिए लोग उनका जुलूस निकालते हैं और उसके बाद सभा होती है।

ब्रजवल्लभ—सभा क्या होती है ?

सुखदा—बहुत से आदमी वहाँ इकट्ठे होते हैं।

ब्रजवल्लभ—और फिर ?

सुखदा—फिर वहाँ नेता लोग भाषण देते हैं।

ब्रजवल्लभ—भाषण क्या होता है ?

सुखदा—भाषण ? (कुछ सोचते हुए) भाषण का मतलब है एक आदमी का ज़ोर से बोलना और बाकी लोगों का चुपचाप सुनना।

ब्रजवल्लभ—अच्छा, अच्छा, जैसे हमारे मास्टर बोलते हैं और हम सब सुनते हैं।

सुखदा—हाँ, हाँ, उसी तरह।

ब्रजवल्लभ—तो नेता लोग लड़कों के नहीं, पर बड़े-बड़े लोगों के मास्टर साहब हैं और वे सब को पढ़ाते हैं।

[शकुन्तला फिर खिलखिलाकर हँस पड़ती है। सुखदा और नौकर भी हँसने लगते हैं।]

सुखदा—हाँ, हाँ, एक प्रकार से ठीक कहता है।

ब्रजवल्लभ—पर, अम्मा, उस जुलूस में जो लोग थे, उनके हाथों में बस्ते तो थे ही नहीं, वे पढ़ते कैसे होंगे ?

सुखदा—वे तुम लोगों के समान नहीं पढ़ते। वे बड़े हैं न, इसलिए उन्हें बस्तों की जरूरत नहीं पड़ती। (उसे गोद में उठाकर उसका मुँह चूमते हुए) अब एक दिन तुझे एक सभा में भेज कर सभा दिखवा दूँगी।

ब्रजवल्लभ—हाँ, हाँ, अम्मा, मुझे जरूर भेजना, जरूर भेजना।

शकुन्तला—और मुझे भी इसके साथ।

सुखदा—हाँ, हाँ, तुझे भी भेजूँगी; पर तूने तो सभाएँ देखी हैं।

[नौकर बाहर चला जाता है।]

सुखदा—तुम दोनों ने अपना-अपना दोपहर का खाना खा लिया न ?

शकुन्तला—हाँ, हाँ, अम्मा, काशीराम ठीक वक्त पर पहुँच गया था।

ब्रजवल्लभ—(सुखदा की गोद से उतरते हुए) और, अम्मा, बाबू जी अब तक कचहरी से नहीं आये ?

सुखदा—नहीं, बेटा, आ गये थे।

शकुन्तला—फिर कहाँ हैं ?

सुखदा—नेताओं की उसी सभा में गये हैं।

ब्रजवल्लभ—तो, अम्मा, मुझे भी काशीराम के साथ भेज दो। मैं भी सभा देख आऊँगा। (कूदता है।)

शकुन्तला—और मुझे भी, अम्मा।

सुखदा—अब तो सभा समाप्त हो गयी होगी, वे आते ही होंगे, अब तक उन्हें आ जाना था।

ब्रजवल्लभ—नहीं, अम्मा, भेज दो। (ठिन-ठिनाता है।)

सुखदा—देख तो, तेरे लिये बाबू जी गेंद लाये हैं।

ब्रजवल्लभ—(प्रसन्न होकर) कहाँ है ?

शकुन्तला—और मेरे लिए ?

सुखदा—एक ही लाये हैं, और कह गये हैं, कमरे में फेंक देना, दोनों में से जो दौड़ कर उसे उठा ले, वह उसी की हो जायगी।

ब्रजवल्लभ—(जल्दी से कूदते हुए) अच्छा, फेंको।

शकुन्तला—हाँ-हाँ, फेंको।

सुखदा—अच्छा, दोनों बराबर खड़े हो।

ब्रजवल्लभ—पर मैं तो दीदी से छोटा हूँ।

सुखदा—(मुस्करा कर) अच्छा, थोड़ा आगे खड़ा हो जा।

[शकुन्तला और उसके कुछ आगे ब्रजवल्लभ खड़ा हो जाता है।]

सुखदा—(जेब से गेंद निकाल कर) अच्छा, देखो, जब एक दो तीन कहूँ, तब दौड़ पड़ना। (कुछ ठहर कर) एक··· दो···तीन ! (दोनों दौड़ पड़ते हैं, पर सुखदा गेंद नहीं फेंकती। लम्बी साँस लेकर अपने आप) और थोड़े दिन यह सुख देखना है !

ब्रजवल्लभ—(लौट कर) अम्मा, तुम तो तंग करती हो।

सुखदा—अच्छा, अच्छा, अबकी बार फेंकूँगी।

[दोनों उसी प्रकार फिर खड़े होते हैं।]

सुखदा—एक···दो···तीन !

[सुखदा गेंद फेंक देती है। दोनों दौड़ते हैं। सुखदा के नेत्रों में फिर आँसू भर आते हैं। शकुन्तला गेंद उठाकर दौड़ती हुई सुखदा के पास आकर उससे लिपट जाती है। आँखों में आँसू भरे हुए उदास मुख से ब्रजवल्लभ भी आता है।]

सुखदा—(उसका उदास मुख देख, उसे गोद में उठा उसका मुख चूमते हुए) उदास हो गया, बेटा; नहीं, नहीं, उदास मत हो। बाबू जो तुम दोनों के लिए दो गेंदे लाये थे। (जेब से दूसरी गेंद निकाल ब्रजवल्लभ को देती है। वह प्रसन्न हो जाता है।)

ब्रजवल्लभ—अम्मा, अब मैं तुमसे छिया-छाई खेलूँगा।

शकुन्तला—हाँ, अम्मा, तुमने हम दोनों को दौड़ाया है, हम तुम्हें दौड़ावेंगे।

सुखदा—(लम्बी साँस लेकर) अच्छी बात है, खेलो। (धीरे से) देखना है, कितने दिन और यह सुख बदा है !

[टेबिल के चारों ओर और इधर-उधर छिया-छाई का खेल चलता है। दोनों बच्चे बीच-बीच में हँसते और किलकते हैं। सुखदा भी हँसती और मुस्कराती है, पर फिर उदास हो जाती है। कुछ समय पश्चात् मुन्ना को गोद में लिये गरीबदास का दाहिने दरवाज़े से प्रवेश। गरीबदास की अवस्था लगभग साठ वर्ष की है। गरीबदास साँवले रंग का ऊँचा-पूरा मोटा व्यक्ति है। सफेद अँगरखा और धोती पहने है। सिर पर साफ़ा बाँधे है और गले में दुपट्टा डाले है। उसके मुख पर अत्यधिक शांति दिखायी देती है। मुन्ना लगभग ६ वर्ष का है। साँवले रंग का साधारण-सा लड़का है। कुरता-धोती पहने है और सिर पर दुपलिया टोपी लगाये हैं। इनके आते ही छिया-छाई का खेल बंद हो जाता है। सुखदा आगे बढ़कर गरीबदास को झुककर प्रणाम करती है और बच्चों से उन्हें प्रणाम करती है। मुन्ना गोद से उतर पड़ता है।]

गरीबदास—हैं···हैं ! खेल बंद क्यों कर दिया ? माँ के साथ बच्चों का यह खेल स्वर्गीय दृश्य है।

शकुंतला—(मुन्ना का हाथ पकड़ कर) अब हम मुन्ना के संग खेलेंगे, अम्मा थक गयी हैं।

ब्रजवल्लभ—हाँ, हाँ, चलो, मुन्ना, तुम्हारे संग खेलेंगे; चलो, बाहर आओ।

[तीनों बच्चे बाहर जाते हैं ।]

गरीबदास—वकील साहब बाहर गये हैं ?

सुखदा—हाँ, महाराज. नेताओं की सभा में गये हैं। आप बिराजिए, आते ही होंगे।

[गरीबदास एक कुरसी पर बैठ जाता है। सुखदा दूसरी कुरसी पर बैठती है।]

सुखदा—आपसे तो कोई भी बात छिपाना मेरे लिए असंभव है, गुरुदेव, आज पतिदेव के हृदय में ब्रह्मदत्तजी के अपकार करने की बात उठी है।

गरीबदास—(आश्चर्य से) कैसे ?

सुखदा—ब्रह्मदत्तजी को किसी प्रकार से नीचा दिखाने के लिए वे असहयोगी होकर वकालत छोड़ने की बात सोच रहे थे।

गरीबदास—अच्छा, ब्रह्मदत्तजी ने तो उन्हें सदा लाभ ही पहुँचाया है। (कुछ देर ठहर कर सोचते हुए) पर मनुष्य-स्वभाव बड़ा विचित्र है। अपने ऊपर उपकार करने वाले के प्रति उसके हृदय में उलटी ईर्षा की उत्पत्ति होती है, परन्तु, बेटी .....

[दाहिने दरवाजे से शीघ्रतापूर्वक यशपाल और चन्द्रभान का प्रवेश। यशपाल और चन्द्रभान दोनों नंगे सिर हैं। यशपाल पुष्पमालाओं से लदा हुआ है और उसके हाथ में रुपयों की

थैली है। इन्हें देखते ही गरीबदास और सुखदा खड़े हो जाते हैं।]

गरीबदास—(यशपाल से) ओ हो! आज तो आप पुष्पों से लदे हुए हैं। और नंगे सिर कैसे ?

यशपाल—(मुस्कराते हुए) टोपी को विलायती होने के कारण मैंने जला दिया, महाराज, और पुष्पों की मालाओं से तो लोगों ने मुझे लाद दिया है।

[चारों कुर्सियों पर चारों व्यक्ति बैठते हैं।]

गरीबदास—साधुवाद !

चन्द्रभान—ओ ! पुष्पों की भरमार, तालियों की कड़-कड़ाहट, जयजयकार का गर्जन !

गरीबदास—अच्छा, यह तो बड़े आनंद की बात है, पर आपका इस प्रकार से एकाएक सत्कार कैसे हुआ ?

यशपाल—कुछ नहीं, वैद्यराजजी, साधारण-सी बात है। आपको मालूम होगा कि आज यहाँ कुछ अखिल भारतीय नेता आये थे।

गरीबदास—हाँ, हाँ, यह तो सभी जानते हैं। उनका जुलूस मेरे औषधालय के सामने से ही निकला था। वहाँ से मुझे भी उनके दर्शन हो गये थे।

यशपाल—मैं भी उस सभा को देखने चला गया था। बड़ा जमाव था। अंतिम वक्ता बोल रहे थे और सभा समाप्त होने वाली थी। वक्ता महाशय इस बात पर बड़ा

खेद प्रदर्शित कर रहे थे कि यहाँ के किसी भी वकील ने एक वर्ष के लिए भी वकालत छोड़, देश-सेवा का व्रत नहीं लिया।

गरीबदास—अच्छा।

यशपाल—मुझमें न जाने एकाएक कैसी आंतरिक स्फूर्ति उत्पन्न हुई कि मैंने कहा इसी देश की मृत्तिका से मेरा शरीर बना है, इसी से मेरे देशवासियों का; जैसा मेरा कुटुम्ब है, मेरे बच्चे हैं, वैसे ही अन्यान्य कुटुम्ब और उनके बच्चे; और देश को मेरी सेवा की जरूरत है तो मैं अपना सर्वस्व त्याग करने को तैयार हूँ। मैंने घोषणा कर दी कि मैं एक वर्ष को अपनी वकालत छोड़ता हूँ।

चन्द्रभान—उस समय ब्रह्मदत्त का मुख। मानो उस पर जूते ही जूते! और जनता? बस, इन पर पुष्पों की वर्षा! तालियों की कड़कड़ाहट! जयजयकार की गर्जना! आह! देवताओं के देखने योग्य दृश्य, देवताओं के!

यशपाल—आप जानते ही हैं, महाराज, जनता तो थोड़े ही में खुश हो जाती है। मेरी इस साधारण-सी सेवा पर मुग्ध हो, फिर तो उसने यहाँ का अस्थायी कांग्रेस कमिटी का मुझे ही सभापति चुन लिया, और नेताओं की अपील पर जो ११३२।=) वहाँ कांग्रेस के काम के लिए एकत्रित हुए थे, वह थैली भी मुझे ही दे दी। स्थायी कमिटी का चुनाव होने पर मैं इस रुपए से जोरों से कांग्रेस का कार्य शुरू करूँगा। (थैली टेबिल पर रख देता है।)

गरीबदास—बड़े हर्ष की बात है, यशपालजी, कि आपके हृदय में देश-सेवा की इस प्रकार स्फूर्ति हुई। जिनके अनेक जन्मों के संचित पुण्य का उदय होता है, उन्हीं के हृदय में देश-सेवा और जन-सेवा की स्फूर्ति होती है। देश-सेवा और जन-सेवा इतना कठिन मार्ग है कि उस पर चलना तलवार की धार पर चलना है, लोहे के चने चबाना है। अपना काम करते हुए थोड़ी-बहुत देश-सेवा और जन-सेवा कर देना ही कठिन है, फिर यह तो अपना सब कुछ छोड़, जैसे आपने अपनी वकालत ही छोड़ दी, अपने गृह, अपने बच्चों तथा अन्यों में कोई अंतर न समझ, अपना समय और सर्वस्व परार्थ के लिए अर्पण कर देना तो अत्यधिक कठिन है। परन्तु, हाँ, सच्चे परार्थ करने वालों को ही सुख प्राप्त होता है।

यशपाल—यह आप बड़े-बूढ़ों का आशीर्वाद है कि मेरे हृदय में इस मार्ग पर चलने का साहस उत्पन्न हुआ और मैंने यह त्याग कर देश-सेवा का कठिन व्रत ले लिया।

चन्द्रभान—सराहनीय साहस! अपूर्व त्याग! विलक्षण व्रत!

गरीबदास—पर, यशपालजी, आपने अपने हृदय को अच्छी प्रकार टटोल तो लिया है न? आपके इस देश-सेवा-व्रत में परार्थ के अतिरिक्त अन्य कोई भाव तो विद्यमान नहीं है?

यशपाल—(कुछ रूखे होकर) कैसा अन्य भाव?

ग़रीबदास—अनेक बार मनुष्य अपना व्यक्तिगत महत्त्व बढ़ाने और दूसरों को नीचा दिखाने अथवा भविष्य में किसी भारी लाभ करने की इच्छा से क्षणिक त्याग कर देश-सेवा का व्रत ग्रहण करते हैं। ऐसे लोगों की देश-सेवा, देश-सेवा नहीं अहम्मन्यता और व्यापार है। न उन्हें इसमें सुख प्राप्त होता है, और न जिनकी वे सेवा करते हैं, उन्हीं को कोई लाभ पहुँचता है।

यशपाल—(अत्यन्त रूखे होकर, एक भेद भरी दृष्टि से चन्द्रभान की ओर देख, फिर गरीबदास की ओर देखते हुए) मुझे बड़ा खेद है कि जिस दिन को मैं अपने जीवन में सब से अधिक महत्त्व का दिन मानता हूँ, जिस दिन अखिल भारतीय नेताओं और सहस्रों की संख्या में जनता ने एक मुख से मुझ पर अपना अनन्य विश्वास प्रकट किया है, उस दिन मेरे एक निकटतम व्यक्ति के मुख से मैं इस प्रकार की बातें सुन रहा हूँ।

चंद्रभान—महान् खेद! अत्यधिक कृतघ्नता! घोर अन्याय!

गरीबदास—मेरी बातें सुनकर यदि आपको दुःख हुआ है तो मुझे क्षमा कीजिए, यशपाल जी, परन्तु मैं अपने को आपका सच्चा हितैषी समझता हूँ, अतः मेरा कर्त्तव्य है कि मैं आपको अपने मन की वृत्तियों के समझ लेने का निवेदन करूँ। मैं यह नहीं कहता कि आपने यह त्याग सच्ची देश-भक्ति की स्फूर्ति में नहीं किया है, मैं तो

केवल आपसे इतना ही निवेदन करता हूँ कि आप अपने मन की पूरी थाह ले लें। अपने हृदय के सच्चे भावों को समझे बिना यदि कोई भी किसी कार्य को करता है तो····

यशपाल—(एकदम उत्तेजित होकर, बीच ही में) आप मुझे उपदेश देना चाहते हैं ? क्षमा कीजिए, यदि मैं यह कहूँ कि जो दो-चार दवाइयों के नुस्खों की पुस्तकों को पढ़, कठबकली की पुड़िया बना-बनाकर बेचता है, उसे एक वकील को इस तरह उपदेश देने का कोई हक़ नहीं है। आप समझते हैं कि दो-चार ग़रीबों को मुफ़्त में दवा बाँट देना, या दो-चार दरिद्रियों को अन्न-वस्त्र दे अपने घर में आश्रय दे देना, जो आप किया करते हैं, परार्थ है; ये ही परार्थ के सच्चे भाव हैं ?

ग़रीबदास—(मुस्करा कर) मैं आपको उपदेश नहीं दे रहा हूँ, यशपाल जी, और न मैंने अपने को कभी परार्थी ही कहा। हाँ, इतना मैं अवश्य मानता हूँ कि कितनों का उपकार किया जाता है इस संख्या से परार्थ नहीं तौला जा सकता। वह तो परार्थ करने वाले के भावों के काँटे पर तौलने की वस्तु है। मैं तो आपसे केवल अपने मन के भावों की थाह लेने के लिए निवेदन करता हूँ।

चंद्रभान—निरर्थक वाद-विवाद ! समय का मूर्खता-पूर्वक अप-व्यय ! (टेबिल की घड़ी को देखकर) रेल का टाइम !

यशपाल—हाँ, हाँ, नेताओं को पहुँचाने स्टेशन चलना है। चलो, चलो, सचमुच इस निरर्थक वाद-विवाद में क्या रक्खा है ?

[यशपाल अपने गले के गजरे उतार कर टेबिल पर रखता है; टेबिल पर रखी हुई थैली को बैग में रख लेता है; और चन्द्रभान के साथ दाहिनी ओर के दरवाजे से बाहर चला जाता है।]

सुखदा—(आँसू भर कर) वकालत छोड़ आये, महाराज, और सुन लीं आपने उनकी बातें ? जब आपसे संभाषण करने में यह स्थिति आ गयी, जब इस तरह भावों में परिवर्तन हो रहा है, तब भला अब इस घर में सुख का निवास क्योंकर रह सकता है ? (सहसा सिसक कर रोने लगती है।)

यवनिका

दूसरा अंक

स्थान—वही

समय—प्रातःकाल

[उसी प्रकार का दृश्य है जैसा पहले अंक में था। सुखदा बेचैनी से इधर-उधर टहल रही है। उसका मुख बहुत ही उदास और उतरा हुआ है। सारी प्रसन्नता नष्ट हो गयी है। रामदेई निकट ही खड़ी है।]

रामदेई—मैं तो, मालकिन, आपकी हालत देख-देखकर सूखी जाती हूँ।

सुखदा—और मैं उनकी दशा देख कर, रामदेई। देखती नहीं, प्रातःकाल की भी चाह लिए बिना ही चल दिये हैं। अब कब तो चाह लेंगे और कब भोजन करेंगे? न खाने का ठिकाना है, न सोने का। तीन ही दिनों में कैसा मुँह उतर गया है? मैंने तुमसे कहा था न कि इस घर का सब सुख चला जायगा!

रामदेई—पर, मालकिन, शहर भर में तो उनका ऐसा नाम हो रहा है, जिसका ठिकाना नहीं। जहाँ कहीं भी जाओ, उन्हीं का चर्चा सुन पड़ता है। रास्ते पर खड़े हुए आदमी बात करते हैं तो उनकी। घरों में काम करते हुए

आदमी बात करते हैं तो उनकी। वे तो इस शहर के महात्मा गाँधी कहलाते हैं। अगर थोड़ी तकलीफ पाकर भी आदमी को इतना नाम मिल जाय तो क्या वह छोटी बात है ? आप जो यह कहती थीं कि ब्रह्मदत्त वकील का अपकार करना उनकी नीयत है यह तो कोई नहीं कहता। सब कहते हैं कि देश के लिए उन्होंने सब कुछ त्याग कर दिया।

सुखदा—(कुरसी पर बैठते हुए) क्योंकि लोग सच्ची बात जानते ही नहीं। जिस दिन लोग सच्ची बात जान लेंगे उस दिन जितनी आज उनकी प्रशंसा हो रही है उससे कहीं ज्यादा निन्दा होगी।

रामदेई—कौन किसी के मन की बात जानता है, मालकिन ?

सुखदा—गरीबदास जी कहते थे, दुनिया में एक को सदा के लिए धोखा दिया जा सकता है, सब को कुछ समय के लिए, लेकिन सब को हमेशा के लिए कोई धोखा नहीं दे सकता। तू तो रामायण पढ़ लेती है न ?

रामदेई—हाँ, मालकिन।

सुखदा—तुलसीदास जी ने भी तो लिखा है, तुझे याद नहीं है—

'उघरे अंत न होाह निबाहू।
कालनेमि जिमि रावण राहू।'

रामदेई—कहाँ कालनेमि, रावण और राहू, और कहाँ मालिक !

सुखदा—(कुछ चकपका कर) हाँ, इसमें शक नहीं कि उनका इन दुष्टों से मिलान नहीं हो सकता; परन्तु उनकी प्रकृति में इस वक्त बहुत बड़ा दोष आ गया है।

रामदेई—पर शहर तो उनमें गुण ही गुण देखता है; उनकी प्रशंसा में पागल हो रहा है।

सुखदा—मैंने कहा न कि लोग अभी सच्ची बात जानते नहीं, फिर संसार में प्रशंसा से अधिक भी कोई चीज है।

रामदेई—क्या, मालकिन ?

सुखदा—गरीबदास जी कहते हैं, अपनी अन्तःकरण शुद्धि। अगर अपना अन्तःकरण शुद्ध है तो चरित्र शुद्ध होगा, चरित्र शुद्ध होगा तो खुद को सुख मिलेगा और प्रशंसा छायावत् पीछे-पीछे चलेगी। यदि अन्तःकरण और चरित्र शुद्ध नहीं है तो कभी सुख न मिलेगा और चाहे क्षणिक तारीफ़ हो जाये पर वह स्थायी नहीं रहेगी।

रामदेई—पर, मालकिन, जिस ब्रह्मदत्त वकील को आप अच्छा समझती हैं, उसे तो शहर भर गाली देता है। वह कौंसिल के लिए खड़ा हो रहा है न।

सुखदा—हाँ, यह तो मुझे मालूम है।

रामदेई—लोग कहते हैं, वह कौंसिल के लिए खड़ा होकर देश-द्रोह कर रहा है, और मैं अभी ब्रजवल्लभ भैया

का जूता सुधारवा के जब मोची के यहाँ से आ रही थी, तब उसने कहा कि उसे बहुत से लोग ब्रह्मदत्त वकील के खिलाफ कौंसिल के लिए खड़ा कर रहे हैं।

सुखदा—(आश्चर्य से) क्या कहा ? मोची ब्रह्मदत्त जी के विरुद्ध खड़ा हो रहा है !

रामदेई—हाँ, मैं अभी सुनकर आयी हूँ और बहुत ठीक हो रहा है, मालकिन। जो देश-द्रोह करे, उसे सजा मिलनी ही चाहिए।

सुखदा—(फिर उठ कर, इधर-उधर घूमते हुए) सारे देशवासी काँग्रेस और महात्मा गाँधी के साथ चलते और कोई कौंसिल में न जाता तो बहुत अच्छा होता, यह मैं जरूर मानती हूँ। इस वक्त ब्रह्मदत्त कौंसिल के लिए खड़े होकर अनुचित बात कर रहे हैं, यह भी मानती हूँ। मोची कोई नीच जाति है और इसलिए उसे कौंसिल में नहीं भेजना चाहिए, यह भी मैं नहीं मानती। लेकिन ब्रह्मदत्त जी कौंसिल के लिए खड़े हो रहे हैं इसलिए उनका अपमान करने की दृष्टि से लोग मोची को खड़ा करें, इस प्रवृत्ति को मैं अत्यन्त निन्दनीय समझती हूँ। (कुछ ठहर कर) रामदेई, इसमें अवश्य वकील साहब का हाथ होगा।

रामदेई—यह तो मैंने नहीं सुना।

सुखदा—अब सुन लेगी। (फिर कुरसी पर बैठकर) ओह ! रामदेई, मनुष्य ईर्षा में क्या-क्या करने पर

उतारू हो जाता है। गरीबदास जी ने कल ही कहा था कि जहाँ एक बार ईर्षा अन्तःकरण में घुसी कि सुख और सन्तोष असम्भव हो जाता है, और देख, उनका कहना कैसा सच निकला ? पहले वे इसलिए असहयोगी हुए कि ब्रह्मदत्त की अपेक्षा कहीं ज्यादा बड़े आदमी हो जायँगे। तू सच कहती है कि सारे नगर में उन्हीं का नाम हो रहा है, पर इससे भी उन्हें सन्तोष न हुआ। अब ब्रह्मदत्त को सर्वथा नष्ट करने के लिए एक मोची को उनके विरुद्ध खड़ा कर रहे हैं। ब्रह्मदत्त को नष्ट करने के बाद भी यह ईर्षा संतुष्ट थोड़े ही होगी। फिर और किसी से ईर्षा होगी और उसे नष्ट करने पर कमर कसी जायगी।

[शकुन्तला और ब्रजबल्लभ का बांई ओर से प्रवेश।]

शकुन्तला—अम्मा, आज हम लोगों के मास्टर साहब नहीं आये ?

सुखदा—बेटा, अब वे न आवेंगे।

ब्रजबल्लभ—तब, अम्मा, हमारा स्कूल का सबक कैसे याद होगा ? स्कूल के मास्टर साहब हमें मारेंगे नहीं ? (घबरा कर कातर दृष्टि से माँ की ओर देखता है।)

सुखदा—(उठकर ब्रजवल्लभ को गोद में उठा, उसका मुख चूमते हुए) नहीं, बेटा, बाबूजी खुद तुम लोगों को पढ़ावेंगे।

ब्रजबल्लभ—(माँ की गोद में ही प्रसन्न होकर कूदता हुआ) अच्छा, बाबूजी पढ़ावेंगे ! तब तो बड़ी अच्छी बात

है। (कुछ ठहर कर) बाबूजी तो, अम्मा, बड़ा अच्छा पढ़ावेंगे। कल हम दोनों को एक गाना सिखा रहे थे। बड़ा अच्छा था, अम्मा, इसी तरह पढ़ावेंगे भी।

सुखदा—कौनसा गाना सिखा रहे थे, बेटा ?

ब्रजवल्लभ—मुझे तो याद नहीं हुआ, पर दीदी को थोड़ा-सा याद हो गया है। मैं उसके साथ गा लेता हूँ।

सुखदा—कौनसा गाना था, बेटी ?

शकुन्तला—बंदेमातरम् का गीत था, अम्मा।

सुखदा—गा लेती है ?

शकुन्तला—थोड़ा-थोड़ा, अम्मा !

सुखदा—गा तो, देखें, कैसा गाती है ?

[शकुन्तला एक ओर हाथ जोड़, गंभीर होकर खड़ी होती है।]

सुखदा—(मुस्करा कर) अच्छा तू तो बहुत गंभीर होकर गाने वाली है।

शकुन्तला—बाबूजी कहते थे, इस गाने को इसी तरह गाना चाहिए।

ब्रजवल्लभ—अम्मा, मैं भी दीदी के साथ गाऊँगा। (शकुन्तला के निकट जाकर, उसी के सदृश हाथ जोड़, गंभीर हो, खड़ा हो जाता है।)

शकुन्तला—(राग में) अ अ अ अ आ बंदेमातरम्

ब्रजवल्लभ—(उसी प्रकार) अ अ अ अ आ बंदे-मातरम्

शकुन्तला—सुजलाम्

ब्रजवल्लभ—सुजलाम्

शकुन्तला—सुफलाम्

ब्रजवल्लभ—सुफलाम्

शकुन्तला—मलयज शीतलाम्

ब्रजवल्लभ—मलयज शीतलाम्

शकुन्तला—अ अ अ अ आ वन्देमातरम्

ब्रजवल्लभ—अ अ अ अ आ बन्देमातरम्

[दोनों चुप होकर मा के निकट जाते हैं ।]

सुखदा—इसके आगे !

शकुन्तला—बस, अभी इतना ही सीखा है, अम्मा ।

सुखदा—तुम दोनों ने तो बड़ा अच्छा गाया !

[दोनों हँसते हुए दौड़ कर बाहर चले जाते हैं । दाहिनी तरफ के दरवाजे से यशपाल का प्रवेश । अब वह खादी का कुरता और खादी की धोती पहने है । सिर पर गाँधी टोपी लगाये है ।]

सुखदा—(आगे बढ़ कर रूखे स्वर में) और क्या अनर्थ कर रहे हो ?

यशपाल—कैसा अनर्थ ?

[दोनों दो कुर्सियों पर बैठ जाते हैं ।]

सुखदा—एक मोची को ब्रह्मदत्त के विरुद्ध खड़ा कर रहे हो !

यशपाल—मैं खड़ा कर रहा हूँ !

सुखदा—(और भी रूखी होकर) और नहीं तो कौन खड़ा कर रहा है ?

यशपाल—(क्रोध से) मैं तुमसे ज़बान नहीं लड़ाना चाहता। दिन और रात सार्वजनिक जीवन में पिसूँ और घर आकर तुमसे बक-बक करूँ, यह मेरी शक्ति के बाहर है। (और भी क्रोध से) फिर तुम्हें तो मेरी चिंता से भी ज्यादा ब्रह्मदत्त की चिन्ता हो गयी दिखती है। क्यों उसका इतना पक्ष है ? मान लो, मैंने मोची को उसके खिलाफ़ खड़ा किया, तो, तुम्हें ब्रह्मदत्त से इतनी सहानुभूति का क्या सबब ?

[सुखदा रो पड़ती है।]

यशपाल—(और भी अधिक क्रोध से) ज़रा सी बात कह दी तो रो पड़ीं। आँसू तो घड़े के समान भरे ही रहते हैं, ढरका दिया और बह चले। बा बा रे·····बाबा ! ऐसे जीवन से तो आत्म-हत्या कर लेना अच्छा है !

सुखदा—(हिचकियाँ लेते हुए) क्या कह रहे हो ? जो मैं तुम्हारे सब सुखों का कारण था, उसी के पीछे तुम आत्म-हत्या की बात सोचते हो ? हाय ! हाय ! यह सुनने के पहले ही मैं क्यों न मर गयी ! (और अधिक रोने लगती है।)

यशपाल—क्षमा करो, बाबा, क्षमा करो। मेरा तो मुह से कुछ निकालना ही मुश्किल हो गया है।

सुखदा—(कुछ शान्त होकर, पर अभी भी हिचकियाँ लेते हुए) नहीं, तुम्हारा मुख से कुछ निकालना कठिन नहीं, पर मेरा कठिन हो गया है। मैं अगर कुछ भी कह दूँ तो ब्रह्मदत्त के प्रति सहानुभूति समझ ली जाती है; यहाँ तक मान लिया जाता है कि तुमसे भी ब्रह्मदत्त की मुझे ज्यादा चिन्ता है।

यशपाल—तुम्हें उससे सहानुभूति है, इसमें कुछ शक नहीं।

सुखदा—(और भी शान्त होकर) भला मुझे उनसे क्यों सहानुभूति होगी ?

यशपाल—यह तुम जानो ?

सुखदा—उनके प्रति अन्याय हो रहा है, यही थोड़ी बहुत सहानुभूति का सबब हो सकता है।

यशपाल—न्याय का तो तुमने ठेका ही ले लिया है। न्याय की तो तुम मूर्तिमती प्रतिमा ही ठहरीं। तुम और ब्रह्मदत्त दो ही न्याय के पक्ष में हो। बाकी तो सब लोग अन्यायी हैं।

[सुखदा चुप रहती है। यशपाल भी चुप रहता है। कुछ देर तक निस्तब्धता रहती है।]

यशपाल—आज चाह मिलेगी या वह भी कहीं जाकर पी आऊँ।

सुखदा—(चौंक कर) हाँ, हाँ, बड़ी भूल हुई। तुम्हारे आने के पहले तो यही सोच रही थी तुम बिना चाह लिये ही बाहर चल दिये हो, पर न जाने कैसे भूल गयी। अभी लायी। (उठ कर शीघ्रता से जाने लगती है।)

यशपाल—मुझे देखते ही झल्ला उठीं, इसलिए भूल गयीं।

सुखदा—(रुक कर कातर दृष्टि से देखते हुए) तुम्हें देख कर झल्ला उठी! जो मेरे मुख, मेरे सौभाग्य, मेरे सर्वस्व का एक मात्र आश्रय है, उसे देख कर झल्ला उठी! आह! क्या कहते हो? (फिर जाने लगती है।)

यशपाल—(लम्बी साँस लेकर) वह वक्त अब चला गया, जब मैं तुम्हारे सुख का एकमात्र आश्रय था, अब मैं तुम्हारे दुख और क्रोध का आश्रय रह गया हूँ।

सुखदा—क्या कहते हो, क्या कहते हो?

यशपाल—जो कहता हूँ, वह सर्वथा सत्य है। तुमने मेरा आज तक ऐसा तिरस्कार किया था, जैसा आज किया?

सुखदा—(आश्चर्य से) मैंने तुम्हारा तिरस्कार किया?

यशपाल—जरूर; तुमने अत्यन्त तिरस्कारपूर्ण स्वर में कहा था कि 'यह तुम और क्या अनर्थ कर रहे हो?'

यह वाक्य अब तक मेरे कानों में गूँज रहा है। अगर तुमने इतने तिरस्कारपूर्ण स्वर में मुझे यह वाक्य न कहा होता तो मुझे भी इस तरह क्रोध न आता जैसा अभी आया था। आज तक मैं तुम पर कभी इस प्रकार क्रोधित हुआ था ?

सुखदा—(कुछ सोचते हुए) हाँ, मेरा ही दोष है, मैंने आज घोर पाप किया है, मेरी बुद्धि ठिकाने नहीं है। मुझे क्षमा करो। (उठ कर यशपाल के पैर पकड़ लेती है और फूट-फूट कर रोने लगती है।)

यशपाल—(उठ कर सुखदा को हृदय से लगाते और आँसू बहाते हुए) यह क्या करती हो, यह क्या करती हो ? मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया। तुम्हें क्षमा न करूँ, यह मेरे लिए मुमकिन ही नहीं है।

[कुछ देर तक दोनों चुपचाप उसी पुकार लिपटे हुए खड़े रहते हैं।]

सुखदा—(अलग हो कर, आँखें पोंछते हुए) अच्छा, अब मुझे चाह लाने दो, बहुत देर हो गयी। फिर भोजन कब करोगे ? (यशपाल का मुख देखते हुए) देखो तो, कैसा मुँह उतर गया है ?

यशपाल—(कुरसी पर बैठते हुए) अब मेरा मुँह याद आया है ? सच है दो मुँह कभी स्मरण नहीं रह सकते। या तो मेरा ही मुँह याद रख लो, या ब्रह्मदत्त का।

[सुखदा मुस्कराती हुई बाईं ओर के द्वार से बाहर चली जाती है। यशपाल एक-दो क्षणों तक गंभीरता से कुछ सोचता हुआ चुपचाप बैठा रहता है फिर नीचे का ओठ ऊपर के दाँतों से दबा, दाहिना पैर कई बार ज़मीन पर पटकता है। फिर दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँध उससे कई बार टेबिल को ठोकता है। फिर उठकर अपना मुख काँच में देखता है और फिर इधर-उधर टहलने लगता है। सुखदा का रामदेई के साथ स्वेश। रामदेई के हाथ में चाह के सामान की रकाबी है। वह टेबिल पर रकाबी रख कर चली जाती है। यशपाल और सुखदा कुर्सियों पर बैठते हैं। आगे के संभाषण में दोनों चाह पीते रहते हैं।]

सुखदा—(कातर दृष्टि से यशपाल की ओर देखते हुए) हम लोगों के विवाह को तेरह वर्ष हो चुके, लेकिन जैसा कलह हम लोगों के बीच आज हुआ वैसा कभी न हुआ था।

यशपाल—कभी नहीं।

सुखदा—(आँखों में आँसू भर कर) और वह मेरे दोष के सबब।

यशपाल—परन्तु उसे अब भूल जाओ।

सुखदा—मैं हमेशा कहती थी न कि हम दोनों पति-पत्नी के सदृश संसार में कोई सुखी न होगा।

यशपाल—सदा; और इसमें संदेह ही नहीं था।

सुखदा—और उन्हीं हम दोनों में इस तरह के कलह ने जन्म ले लिया। (आँसू गिरने लगते हैं।)

यशपाल—(कुछ रूखे होकर) किन्तु इस सब को भूल जाना चाहिए।

सुखदा—आज के कलह को भूल जाने से भी उसकी जड़ तो न कटेगी, कल फिर वही बात होगी।

यशपाल—(और अधिक रूखे होकर) फिर जड़ काटने के लिए क्या किया जाय ? तुम शायद कह दोगी कि मैं अपना सार्वजनिक जीवन छोड़ दूँ, दिन भर तुम्हारा मुख देखते हुए बैठा रहूँ, जो कुछ तुम कहो वही सुना करूँ और वही किया करूँ।

सुखदा—नहीं, मैं इस प्रकार इस कलह को जड़ नहीं कटवाना चाहती।

यशपाल—तब ?

सुखदा—देखो जब तक दो व्यक्तियों के भिन्न-भिन्न आदर्श रहते हैं, और एक दूसरे के मत को वे शान्तिपूर्वक सहन नहीं करते, तब तक इस तरह का कलह होना अनिवार्य रहता है। मैंने इस कलह को मिटाने के लिए अपने जीवन का आदर्श ही तुम्हारे जीवन के आदर्श में समाविष्ट करने का निर्णय कर लिया है। मैं तुमसे अलग अपना व्यक्तित्व ही न रखूँगा। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। जहाँ अपने पन का स्वार्थ है वहाँ.....प्रेम नहीं। प्रेम का अन्तिम रूप प्रेमी में अपने को विलीन कर देना है। वही करूँगा, एक हिन्दू-पत्नी को जो करना चाहिए, वही

करूँगी। मुझे ब्रह्मदत्त से क्या प्रयोजन है, और क्या मतलब है कौंसिल से? मुझे तुमसे काम है। अगर तुम रात को दिन कहोगे, और दिन को रात, तो मैं भी वही कहूँगी। (मस्तक नीचा कर लेती है।)

बलपाल—(प्रसन्न होकर) तुम मुझ पर इतना प्रेम करती हो! इतना प्रेम करती हो! (उठकर सुखदा की कुरसी के निकट जा, उसकी ठोड़ी पकड़ मुख ऊपर उठाता है।)

सुखदा—(आँसू भर कर) इस सम्बन्ध में मैं तुम्हें क्या बताऊँ? लेकिन नहीं, यदि पूछते ही हो तो सुनो। अरम्भ से ही तुम्हारा मुख देखते-देखते मैं कभी थकित न हुई, तुमसे बातें करते-करते मुझे कभी श्रम का अनुभव नहीं हुआ। जब तुम्हारा मुख मेरे सम्मुख आता है, बहरे मनुष्य के समान मेरी दृष्टि तीव्र हो जाती है और जब तुम्हारा शब्द सुनती हूँ तो अन्धे मनुष्य के समान कान। मेरा इस तरह एकटक तुम्हारा मुख देखना, सब कुछ भूल कर तुम्हारा कथन सुनना, अन्यों को निरर्थक जान पड़ेगा, किन्तु मैं तो समझती हूँ कि प्रेम के स्वर्ग में उन्हीं बातों को सब से ज्यादा महत्त्व है, जिन्हें इस संसार के लोग निरर्थक कहते हैं, उनका कोई अन्य साधन नहीं रहता, लेकिन प्रेम साधन और साध्य दोनों ही है। जब तुम कहीं बाहर चले जाते हो तब तुम जानते हो कि तुमसे नित्य-प्रति पत्र भेजने को कहती हूँ। जब तुम्हारे पत्र मुझे मिलते हैं तब उनके अक्षर मुझे प्रेम की बँदों के समान दिखायी पड़ते हैं और उनकी

पंक्तियाँ प्रेम-समुद्र की ओर बढ़ने वाली सरिताएँ। जब पूरा का पूरा पत्र देखती हूँ तब मुझे वह प्रेम का सागर दिखायी देता है। भगवान् का पूजन हिन्दुओं में सर्वश्रेष्ठ कर्म माना जाता है। भिन्न-भिन्न मनुष्य उसे भिन्न-भिन्न प्रकार से करते हैं। मैं उसे तुम्हें प्रेम करके करती हूँ। (आँसू गिरने लगते हैं। यशपाल उसका मुख चूम लेता है।) अब तो हम दोनों के बीच कभी कलह न होगा ? मैं तो उसकी बात सोच कर ही काँपी जाती हूँ।

यशपाल—(पुनः उसे चूम कर) कभी नहीं, कभी नहीं। आज मुझे मालूम हुआ कि तुम केवल प्रेम की ही पवित्र प्रतिमा नहीं हो, किन्तु साथ ही त्याग की भी मूर्त्तिमंत मूर्त्ति हो !

सुखदा—अच्छा, तुम चाह तो पूरी पी लो।

[यशपाल पुनः अपनी कुरसी पर बैठ चाह पीने लगता है। दोनों कुछ देर चुप रहते हैं।]

यशपाल—(कुछ सोचते हुए) आज अपने व्यक्तित्व को मेरे व्यक्तित्व में समाविष्ट कर तुमने दुनिया में सबसे बड़ा त्याग किया है। इस तरह का त्याग हिन्दू स्त्रियाँ ही कर सकती हैं और शायद कोई नहीं। अगर तुम मुझसे अपने लिए ऐसा त्याग करने को कहती तो मैं मुक्तकंठ से मंजूर करता हूँ कि मैं न कर सकता था, परन्तु एक बात मैं तुम्हें कह देना चाहता हूँ।

सुखदा—क्या ?

यशपाल—तुम मेरा आज का क्रोध देखकर यह न समझ लेना कि मैं तुम पर प्रेम नहीं करता। अगर तुम मुझे इतना चाहती हो, तो, विश्वास रखो, संसार में मैं तुम्हें जितना चाहता हूँ, उतना किसी को नहीं। (आँखों में आँसू भर आते हैं।)

सुखदा—यह मैं जानती हूँ।

यशपाल—तुम्हारा हृदय मुझसे शायद अधिक शुद्ध है, ज्यादा कोमल है। स्त्रियों का हृदय ही कदाचित् ऐसा रह सकता है। जिन पुरुषों को नित्यप्रति जीवन-संग्राम के क्षेत्र का सैनिक रहना पड़ता है, उनका हृदय इतना शुद्ध और कोमल रहना शायद सम्भव ही नहीं है। फिर प्रेम में यह भी देखा गया है कि दो प्रेमियों में जो निर्बल होता है, वही अधिक त्याग भी करता है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि सबल के हृदन में निर्बल के प्रति कम प्रेम रहता है, लेकिन सबल होने के सबब निर्बल से वह शायद ज्यादा ग्रहण करने की शक्ति रखता है। (आँसू भर कर) ब्रह्मदत्त के विरुद्ध मेरे मन की ईर्षा देखकर कहीं तुम मुझे पतित मनुष्य तो नहीं समझने लगीं ?

सुखदा—आज से तुम्हें मैं सर्वोत्तम मनुष्य के सिवा और कुछ समझ ही नहीं सकती।

यशपाल—मुझमें दोष नहीं है, यह मैं नहीं कहता, निर्दोष तो कदाचित् भगवान के अतिरिक्त और कोई नहीं

है; लेकिन दूसरों से मुझमें बहुत कम दोष हैं, इसका मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ।

सुखदा—मुझे भी इसके विश्वास दिलाने की ज़रूरत है ?

यशपाल—मैंने आज तक अपना चरित्र हमेशा शुद्ध रखा है। तुम्हारे सिवा मैंने किसी अन्य स्त्री की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। व्यसनों से मैं सदा दूर रहता हूँ। अन्य व्यसनों की तो बात ही अलग है, तुम जानती हो, मैं सिगरेट तक नहीं पीता, और चाह तो तुमने मेरे पीछे लगायी है।

सुखदा—चाह तो व्यसन न होकर एक तरह का भोजन है।

यशपाल—ब्रह्मदत्त के खिलाफ़ अगर मैं कुछ कर रहा हूँ तो इसमें मेरे अकेले का दोष न होकर उसका भी दोष है। उसने मुझे छात्रवृत्ति क्या दी है, वह मेरे लिए म्युनिस्पैल्टी और डिस्ट्रिक्ट कौंसिल की मेम्बरी और वाइस प्रेसीडेन्टी से अलग क्या हुआ है, उसने तो यह समझ लिया है कि उसने मुझे खरीद ही लिया है। जहाँ कहीं वह मुझसे मिलता है, इस तरह बात करता है, मानों मैं उसका क्रीत-दास होऊँ; अतः मेरे मन में भी उसके प्रति ग्लानि उत्पन्न हुई है; मैं भी उसे गिरा कर उसका मद-मर्दन करना चाहता हूँ। मैं अपने को मनुष्य मानता हूँ, देवता नहीं। ऐसी परिस्थिति में किसी भी मनुष्य के मन में मेरे सदृश

ही भाव उठेंगे, यह मैं दावे के साथ कह सकता हूँ। मैं तुम्हें सच बताये देता हूँ कि उस मोर्चा को मैंने ही ब्रह्मदत्त के विरुद्ध खड़ा किया है।

सुखदा—तुम कुछ भी करो, अब मैं हर बात में तुम्हारा समर्थन करूँगी।

यशपाल—मैं तुमसे आज तक कभी झूठ नहीं बोला। आज इस सम्बन्ध में मैंने तुमसे झूठ कह दिया था, मुझे क्षमा...

[शकुंतला और ब्रजवल्लभ का प्रवेश।]

ब्रजवल्लभ—(दौड़कर यशपाल के निकट आते हुए) बाबू जी, पढ़ा दीजिए। अम्मा कहती हैं कि अब आप हम लोगों को पढ़ाएँगे।

यशपाल—(ब्रजवल्लभ को गोद में लेकर) हाँ, हाँ, बेटा; मैं तुझे पढ़ाऊँगा।

शकुन्तला—(यशपाल के निकट आते हुए) और मुझे भी, बाबू जी।

यशपाल—हाँ, हाँ, तुझे भी, बेटी। (कुछ ठहर कर) पर देखो, आज तो देर हो गयी। कल प्रातःकाल से पढ़ाऊँगा।

ब्रजवल्लभ—फिर आज का सबक ?

सुखदा—आज मैं पढ़ा दूँगी।

यशपाल—और भोजन कौन बनावेगा ?

सुखदा—(मुस्करा कर) भोजन भी बनाती जाऊँगी और पढ़ाती भी जाऊँगी। फिर आज तो तुमने चाह भी देर से ली है, भोजन भी विलम्ब से करोगे; कचहरी थोड़े ही जाना है।

यशपाल—पर इन्हें तो स्कूल जाना है न ?

सुखदा—ऊँह !...इनके योग्य भोजन पन्द्रह मिनट में बन जायगा। चलो, भोजन बनाना भी शुरू करूँ और तुम्हें पढ़ा भी दूँ। (उठकर जाने लगती है; बच्चे भी साथ-साथ जाने लगते हैं। फिर रुक कर) हाँ, तुमने इन्हें बन्दे-मातरम् का गीत तो खूब सिखाया। बड़े सुंदर ढंग से गाते हैं। एक दफ़ा गाओ त , बच्चो।

[बच्चे ठहर कर उसी प्रकार हाथ जोड़कर उतना ही गीत गाते हैं।]

सुखदा—अब तो सारा घर देश-भक्त हो रहा है। (मुस्करा कर) ब्रह्मदत्त की ईर्षा से देश-भक्ति शुरू हुई है, लेकिन वह खत्म अच्छे स्थान पर होगी।

यशपाल—(हँसते हुए) अच्छा कार्य अगर किसी वजह से भी आरम्भ हो, वह अच्छा ही रहता है।

सुखदा—यह तो मैं नहीं मानती, पर...(रुक कर) अरे, मैं तो फिर बहस पर उतारू होने लगी। मुझे तो अब जो कुछ तुम कहो, उसमें 'हाँ' करना है।

यशपाल—पर इसका यह अर्थ नहीं है कि किसी बात में भी तुम अपनी स्वतन्त्र सम्मति न दो।

सुखदा—यह तो ठीक है, पर एक बार जहाँ स्वतन्त्र सम्मति देना शुरू किया, वहाँ उसका अन्त कहाँ होता है, यह कभी निश्चित नहीं रहता।

[सुखदा और दोनों बच्चे बाएँ दरवाज़े से बाहर चले जाते हैं। यशपाल उठकर इधर-उधर टहलता है। दाहिने दरवाज़े से अख़बारों का एक बंडल लिये हुए चन्द्रभान का प्रवेश। उस बंडल को टेबिल पर रख देता है। वह भी अब खादी के वस्त्र पहने हुए है।]

यशपाल—(चंद्रभान को देखकर) अच्छा, तुम आ गये ? अख़बार ले आये ? कौन-कौन है ?

चन्द्रभान—लीडर, पत्रिका, टाइम्स, क्रानिकल, स्टेट्समैन।

[दोनों कुर्सियों पर बैठते हैं और यशपाल एक-एक अख़बार खोलता है।]

यशपाल—मेरी वकालत छोड़ने की ख़बर छपी है ?

चन्द्रभान—हाँ, सब लाल पेंसिल से मार्कड्।

यशपाल—(एक अख़बार पढ़ते हुए) 'ए लीडर गिव्स अप प्रेक्टिस'। वाह ! नाम तक नहीं छापा। जब पंडित मोतीलाल नेहरू ने वकालत छोड़ी थी, तब तीन-तीन

कालम के हेडिंग में एक-एक इंच के अक्षरों से नाम छपा था। (दूसरा पत्र खोलता है)

चन्द्रभान—गंदे पत्र ! गधे सम्पादक ! बदमाश संवाददाता !

यशपाल—(दूसरा पत्र पढ़ते हुए) इसमें नाम तो है, पर हेडिंग नदारद; वाह, वाह ! (तीसरा पत्र पढ़ने लगता है। कुछ ठहर कर) इसमें नाम और हेडिंग हैं तो मुख्य पेज पर समाचार ही नहीं।

चन्द्रभान—सब का यही हाल, कोई न कोई दोष !

यशपाल—(चौथा पत्र पढ़ते हुए) ठीक है, भाई, जिन्होंने लाखों रुपये पहले से जमा करके थोड़े दिनों के लिए त्याग कर दिया, उनका महत्त्व है, लेकिन जिस बेचारे ने एक टका भी इकट्ठा नहीं किया, जिसके सामने अभी पूरी की पूरी उम्र निर्वाह करने को पड़ी हुई है, उसके त्याग का कोई महत्त्व नहीं। (चौथा पत्र लपेटता तथा पाँचवाँ पत्र पढ़ता है।)

चन्द्रभान—विचित्र विश्व ! अद्भुत आदमी !

यशपाल—इन दोनों का भी यही हाल है।

[दोनों कुछ देर तक चुप बैठे रहते हैं।]

चन्द्रभान—आज नामजदी का अखीर ! ढाई सौ रुपया !

यशपाल—(चौंक कर) अच्छा, आज कौंसिल की नामज़दी का अन्तिम दिवस है ! भाई, मैं बहुत सोचता रहा, पर ढाई सौ रुपये मेरे पास कहाँ ?

चन्द्रभान—(दोनों हाथ हिलाते हुए) फिर मोची बन्द, ज़मानत बिना कैसे ?

यशपाल—(कुछ सोचते हुए) यह तो बड़ी कठिन परिस्थिति है। बिना ज़मानत के ढाई सौ रुपयों के मोची सचमुच खड़ा नहीं हो सकता। और ढाई सौ रुपयों का इन्तज़ाम कैसे हो ? (कुछ ठहर कर) उस मोची के पास नहीं है ?

चन्द्रभान—राम, राम ! ग़रीब आदमी !

यशपाल—(और सोचते हुए) कहीं से कर्ज़ नहीं मिल सकता ? यह रुपया तो कुछ दिनों में वापस मिल ही जायगा।

चन्द्रभान—कहाँ, किसके पास से ?

यशपाल—(अत्यन्त गम्भीर होकर) फिर क्या करना ?

चन्द्रभान—क्यों, ग्यारह सौ बत्तीस की थैली ?

यशपाल—हाँ, पर वह रुपया तो कांग्रेस के कार्य के लिए इकट्ठा हुआ है, इस काम में कैसे दिया जा सकता है ?

चन्द्रभान—क्यों, कुछ दिनों में वापस।

यशपाल—पर फिर भी उस रुपये को हाथ लगना ठीक नहीं है।

चन्द्रभान—तब मोची बन्द, जमानत बिना कैसे ?

[दोनों कुछ देर तक चुप रहते हैं ।]

चन्द्रभान—अच्छा तो वन्दे । (उठकर जाने लगता है ।)

यशपाल—ठहरो, (कुछ ठहर कर) वह रुपया लौट तो जरूर आयगा ?

चन्द्रभान—(रुक कर वेपरवाही से) बिना सन्देह ।

यशपाल—(उठते हुए) अच्छा तो फिर उसी में से ले जाओ: जमानत के रुपये की कमी के सबब मोची खड़ा न हो सके, यह तो बड़े खेद की बात होगी ।

चन्द्रभान—महान् खेद ! नितान्त लज्जा !

[यशपाल बाईं ओर के द्वार से बाहर जाता है । चन्द्रभान मुस्कराता और इधर-उधर टहलता है । यशपाल का पुनः प्रवेश ।]

यशपाल—(चन्द्रभान को देखते हुए) ये लो···ये ढाई सौ के नोट हैं ।

चन्द्रभान—(नोट गिन कर जेब में रखते हुए) अच्छा तो···(जाने को उद्यत होता है)

यशपाल—नामजदी कराके मिलना ।

चन्द्रभान—अवश्य, वन्देमातरम् !

यशपाल—वन्देमातरम् !

[चन्द्रभान दाहिनी ओर के दरवाज़े से बाहर जाता है। यशपाल कुछ सोचता हुआ इधर-उधर टहलता है, फिर लिखने की टेबिल के निकट जाकर घड़ी देखता है।]

यशपाल—(घड़ी देखने के पश्चात्) काशीराम, ओ काशीराम !

[नौकर का बाईं ओर के दरवाज़े से प्रवेश।]

यशपाल—नहाने का प्रबन्ध कर दिया ?

काशीराम—अभी करता हूँ, मालिक।

[काशीराम पुनः उसी दरवाज़े से बाहर जाता है। गरीबदास का दाहिनी ओर के दरवाज़े से प्रवेश]

यशपाल—(गरीबदास को प्रणाम कर के) आइए, वैद्यराजजी, आइए।

[दोनों दो कुर्सियों पर बैठते हैं।]

गरीबदास—इस समय आपको कष्ट देने का एक प्रयोजन है, यशपाल जी।

यशपाल—कहिए, आज्ञा दीजिए।

गरीबदास—बाज़ार में मैंने एक बड़ी अद्‌भुत बात सुनी है।

यशपाल—क्या, महाराज ?

गरीबदास—एक मोची ब्रह्मदत्त जी के विरुद्ध खड़ा किया जा रहा है।

यशपाल—(बेपरवाही से) हाँ, मैंने भी सुना है, गरीबदास जी।

गरीबदास—आपने सुना है ? मुझे तो यह समाचार मिला है कि आप ही उस मोची को ब्रह्मदत्तजी के विरुद्ध खड़ा कर रहे हैं।

यशपाल—(आश्चर्य से) मैं ? मैं भला किस सिद्धान्त के अनुसार ऐसा कर सकता हूँ ? आप जानते हैं कि हम कांग्रेसवादी किसी न किसी सिद्धान्त के अनुसार चलते हैं। कौंसिलों में न जाना हमारा सिद्धान्त है। खड़े होने वालों में न खड़े होने की प्रार्थना करना हमारा सिद्धान्त है। मतदाताओं से मत देने को न जाने के लिए कहना हमारा सिद्धान्त है। पर किसी को किसी के खिलाफ़ खड़ा करना यह तो हमारा सिद्धान्त नहीं है। आपको जो समाचार मिला है, वह बिलकुल ग़लत है।

गरीबदास—परन्तु, यशपालजी, मेरे इस समाचार का सूत्र इतना विश्वसनीय है कि यह समाचार ग़लत होने की बीस बिस्वों में एक बिस्वा भी संभावना नहीं दीखती, यद्यपि मैं यह नहीं कह सकता कि इसका ग़लत होना असंभव है, क्योंकि संसार में कोई बात भी असंभव नहीं हो सकती।

यशपाल—जब आप यह मानते हैं कि दुनिया में कोई बात भी असंभव नहीं हो सकती तो मैं निवेदन करना

चाहता हूँ कि आपके विश्वसनीय सूत्र ने आपको ग़लत समाचार दिया है।

ग़रीबदास—परन्तु·····

यशपाल—(कुछ उत्तेजित होकर बीच ही में) मैं समझता हूँ कि इस विषय पर वाद-विवाद निरर्थक है। मुझे स्नान करना है और आपको भी अन्य कार्य होंगे। (उठता है।)

ग़रीबदास—(मुस्कुरा कर) आप इतने उत्तेजित क्यों होते हैं, यशपालजी ? आपकी इस उत्तेजना से तो मुझे अपने समाचार के सूत्र की सचाई पर और अधिक विश्वास होता है।

यशपाल—(क्रोध से) क्या आप मेरे घर में मेरा अपमान करने के लिए आये हैं ! झूठा कह कर मुझे गालियाँ देने के लिए आये हैं ! मेरे वकालत छोड़ने के दिन भी आपने कुछ फ़िज़ूल बातें बकी थीं। यही आप आज कर रहे हैं। आप मेरे पिता के दोस्तों में से हैं, इसीलिए मैं आपकी इन सब बातों को सहन कर रहा हूँ, अन्यथा····· (रुक जाता)

ग़रीबदास—(मुस्कराते हुए) अन्यथा पर क्यों रुक गये, यशपालजी, पूरी बात कह दीजिए।

यशपाल—(झुंझला कर) क्या पूरी बात कहूँ ! आप

सिर्फ़ निरर्थक बातें ही नहीं करते, पर क्षमा कीजिए, अगर यह कहूँ कि आप निर्लज्ज भी हैं।

गरीबदास—(उसी प्रकार मुस्कुराते हुए) और कुछ ? (कुछ ठहर कर) बैठिए, थोड़ा बैठिए, मैं आपसे कुछ आवश्यक बातें निवेदन करना चाहता हूँ।

यशपाल—(झुंझला कर) कहिए, पर जो कुछ कहना हो ज़रा जल्दी से कह दीजिए। मेरे स्नान और भोजन में देर हो रही है।

गरीबदास—यदि सभाओं और मशविरों के कारण आप दो बजे दिन को भोजन कर सकते हैं, और दो बजे रात को सो सकते हैं, तो अपने पिता के मित्र एक ग़रीब ब्राह्मण की बातों को भी थोड़ा धैर्य से सुन सकते हैं।

यशपाल—(अत्यन्त झुंझला कर) ओह ! कहिए न आपको जो कुछ कहना है।

गरीबदास—(मुस्कराते हुए) कहता हूँ, यशपालजी, कहता हूँ, आप थोड़ा शांत हो लीजिए।

यशपाल—लीजिए, चुप बैठ जाता हूँ। (कुर्सी पर बैठ जाता है।)

[दोनों कुछ देर तक चुप रहते हैं।]

गरीबदास—मैं आपका बहुमूल्य समय अधिक न लूँगा। मैं आपसे इतना ही निवेदन करना चाहता हूँ, जिस

पर मैं आशा करता हूँ आप शांति से विचार करेंगे, कि आप इस समय असहयोग-मार्ग पर जिस प्रकार चल रहे हैं, वह ठीक नहीं है।

यशपाल—(अत्यन्त रूखे स्वर में) क्या महात्मा गाँधी की भी आप आलोचना करने का साहस करते हैं? महात्मा गाँधी का बताया हुआ असहयोग का रास्ता ठीक नहीं है?

गरीबदास—नहीं, यशपालजी, मैं महात्मा गाँधी की आलोचना करने की शक्ति नहीं रखता। उन्हें मैं संसार का सर्वश्रेष्ठ पुरुष मानता हूँ। उनका असहयोग और सत्याग्रह अन्याय का सामना करने के ऐसे मार्ग हैं, जैसे विश्व में अब तक कभी न निकले थे।

यशपाल—फिर!

गरीबदास—परन्तु किसी पथ के अच्छे रहने पर उसके पथिक भी अच्छे हैं, यह नहीं कहा जा सकता।

यशपाल—(घृणा से हँसकर) तो आप असहयोग को बुरा न कह कर उस पर चलने वालों को बुरा कहते हैं। असहयोग को बुरा न कहा, असहयोगी को बुरा कह दिया। नाक सीधे न पकड़ी, हाथ घुमा कर पकड़ ली।

गरीबदास—नहीं, मैं उसके सब पथिकों को कदापि बुरा नहीं कहता, अनेक पर मेरी अत्यधिक श्रद्धा है; और उन अनेक के सदृश हमारे नगर से यदि आपने भी देश-

सेवा की सच्ची लगन से वकालत छोड़ी होती, सच्ची देश-सेवा और जन-सेवा आरंभ की होती, तो इससे अधिक श्रेयस्कर और कोई बात न हो सकती थी, परन्तु मैं देखता हूँ कि बात ऐसी नहीं है।

यशपाल—(क्रोध से) फिर कैसी बात है ?

गरीबदास—वही बताता हूँ, वही बताना हूँ, यशपाल जी; थोड़ा शांति से मेरी पूरी बात तो कृपा कर सुन लीजिए।

यशपाल—कहिए, कहे चलिए।

गरीबदास—जिस दिन आपने वकालत छोड़ी थी, उस दिन मैंने आपसे निवेदन किया था कि आप स्वयं अपने मन के भावों की थाह ले लें, परन्तु उस दिन आप एकदम उत्तेजित होकर चले गये। आज भी आप मेरी उस दिन की बात को निरर्थक मानते हैं, किन्तु मैं आप से फिर कहता हूँ कि वह बात निरर्थक नहीं थी। आज भी यदि आप अपने हृदय को टटोलने की कृपा करें तो आपको स्वयं मालूम हो जायगा कि आप जो कुछ इस समय कर रहे हैं, वह देश-सेवा या जन-सेवा के भावों से प्रेरित होकर नहीं कर रहे हैं।

यशपाल—(क्रोध से) फिर किस बात से प्रेरित होकर कर रहा हूँ ?

गरीबदास—यदि इसका उत्तर आप अपने हृदय ही से ले लेते तो अधिक अच्छा होता, परन्तु जब आप मुझसे पूछते ही हैं तो मैं स्पष्ट बता देना चाहता हूँ, और मैं आशा करता हूँ, कि आप मेरी पूरी बात सुन लेंगे।

यशपाल—हाँ, हाँ, कहिए।

गरीबदास—आप इस समय जो कुछ कर रहे हैं, वह ईर्षा के वश होकर। ब्रह्मदत्त जी से ईर्षा होने के कारण आपने वकालत छोड़ी। उनके विरुद्ध आप ही एक मोची को खड़ा कर रहे हैं। आपको उस व्यक्ति से ईर्षा हुई है, यशपाल जी, जिसने आपको न जाने कितनी सहायता दी है। यह दुर्भाग्य की बात है कि मनुष्य अनेक बार उनसे ही ईर्षा करता है, जो उसके उपकारी रहे हैं। क्षमा कीजिए, यदि मैं यह कहूँ कि आजकल के पढ़े-लिखे लोगों में यह प्रवृत्ति अधिक होती जा रही है। आपकी यह देश-भक्ति नहीं ईर्षा-भक्ति है। इससे आप कभी सुख न पा सकेंगे। अपने अत्यधिक सुखी गृह को भी दुखी कर लेंगे और अन्यों को भी सुख न पहुँचा सकेंगे। आपकी आज जो प्रशंसा हो रही है, इसे आप स्थायी न समझिए। उसी की प्रशंसा स्थायी रहनी है, जिसके कार्यों की नींव शुद्ध अन्तःकरण की शुद्ध भावनाएँ हैं। ऐसी भावनाओं वाले प्रशंसा के पीछे नहीं चलते, परन्तु प्रशंसा उनके पीछे चलती है। वे घूम कर भी उसकी ओर नहीं देखते, पर अपने पथ पर चला करते हैं। आप जिस मार्ग पर चल रहे

हैं, वह उत्थान का नहीं, पतन का मार्ग है, और वह और अधिक इसलिए कि यथार्थ वह जैसा नहीं है वैसा लोग उसे समझ रहे हैं। बुरी वस्तु यदि बुरी ही दीखे तो वह उतनी भयानक नहीं होगी, जितनी अच्छी दीखने पर होती है। आपके हृदय में इस समय परार्थ नहीं, किन्तु अत्यधिक काला स्वार्थ है। इसे न भूलिएगा, यशपाल जी, कि मनुष्य जो सोचता है प्रायः वही हो जाता है। यदि वह किसी की बुराई सोचता है तो स्वयं बुरा हो जाता है। मनुष्य को उसके कर्म सूर्य से भी अधिक प्रकाशवंत और अमारात्रि से भी अधिक श्याम बना सकते हैं। जैसा वह नहीं है, यदि वह दूसरों को प्रदर्शित करे तो वह जीवन मिथ्या-जीवन है। मिथ्या-जीवन कदापि सुखी-जीवन-नहीं हो सकता। जिनका ऐसा जीवन है, उन्हें भीतर ही भीतर अत्यधिक क्लेश सहन करना पड़ता है। इस प्रकार का सतत मिथ्या-जीवन अपने आपको ऐसा कष्ट देता है, जिसे मूक रह कर ही सहना पड़ता है और अपने निकटतम मित्र से भी नहीं कहा जा सकता। इतना ही नहीं, कुछ समय पश्चात् यह सारा बाह्य आडम्बर स्वयं को ही भार स्वरूप हो जाता है। भीतर की कालिमा से बाहर चटकीले रंग नहीं रंगे जा सकते। भीतर पैशाचिक इच्छाएँ देवताओं-सा बाह्य मुख नहीं रहने दे सकतीं। अपना ही धूर्तता के लगातार पान से अपना ही जी मिचलाने लगता है और ऐसे अवसर भी उपस्थित होते हैं, जब धूर्त अपनी ही

धूर्तता का सर्वसाधारण के सामने वमन करने के लिए आतुर हो उठता है। किसी अन्य के द्वारा अपने दुष्कृत्यों का भंडाफोड़ कष्टप्रद, महान् कष्टप्रद है, परन्तु साहस के साथ अपने ही दुष्कृत्यों का यदि स्वयं ही भंडाफोड़ कर दिया जाय तो वह महान् सुख पहुँचाता है; इतना ही नहीं, अनुपम वीरता का कृत्य हो जाता है। यशपाल जी, आप-का भंडाफोड़ हुए बिना न रहेगा। आपका सच्चा स्वरूप एक न एक दिन प्रकट होगा ही। या तो महात्मा गाँधी के पवित्र असहयोग के योग्य बनिए या उसे कलुषित न कीजिए। क्यों अपने स्वर्गीय गृह-जीवन को नरक बना रहे हैं? (चुप हो जाता है।)

यशपाल—मैंने शान्ति से आपकी बातें सुन ली न?

ग़रीबदास—हाँ, यशपाल जी, इसके लिए मैं आपका अत्यन्त अनुग्रहीत हूँ।

यशपाल—(जल्दी से उंगली दिखाते हुए) और मेरा जवाब आपको यह है कि आज के बाद आप इस घर में पैर न रखना, नहीं तो.....

[यशपाल का उठकर बाईं तरफ़ के दरवाज़े से प्रस्थान। ग़रीबदास चुपचाप बैठा हुआ उसी ओर देखता है।]

यवनिका

तीसरा अंक

स्थान—वही

समय - तीसरा पहर

[वैसा ही दृश्य है जैसा-जैसा पहले अंक में था। सुखदा कुर्सी पर बैठी हुई हाथ पर मुँह रखे कुछ सोच रही है। यद्यपि वह चिंतामग्न है, तथापि उसका मुख वैसा उदास और उतरा हुआ नहीं है, जैसा दूसरे अंक के आरम्भ में था, वरन् उस पर अब पुनः प्रसन्नता दीखने लगी है। उसकी इस समय की प्रसन्नता पहले अंक की प्रसन्नता के सदृश नहीं है, क्योंकि उसमें गंभीरता का मिश्रण हो गया है। रामदेई का शीघ्रता से दाहिनी ओर के द्वार से प्रवेश। वह बड़ी प्रसन्न है।]

रामदेई—मालकिन, चुनाव का नतीजा निकल आया। ब्रह्मदत्त जी हार गये और मोची जीत गया। ब्रह्मदत्त जी बहुत बुरी तरह हारे, मालकिन।

सुखदा—वह तो पहले से ही जान पड़ता था। (मुस्करा कर) पर तू तो ऐसी प्रसन्न है, रामदेई, कि मानो तू ही चुनाव में जीती हो।

रामदेई—(मुस्करा कर) मैं ही क्या सारा शहर खुश है, मालकिन, सारा शहर; और आप भी तो अब उदास नहीं रहतीं। आपको भी ब्रह्मदत्त की हार से कोई दुःख नहीं हुआ दीखता।

सुखदा—पर मेरे सुख का तो दूसरा सबब है, रामदेई।

रामदेई—क्या, मालकिन ?

सुखदा—मैंने सदा प्रसन्न रहने का एक रास्ता निकाल लिया है।

रामदेई—हमेशा .खुश रहने का रास्ता ! यह तो बड़े ताज्जुब की बात है, मालकिन ! हमेशा तो कोई .खुश नहीं रह सकता, पर आप आजकल .खुश जरूर रहती हैं। हमेशा .खुश रहने का कौन-सा रास्ता है, मालकिन ?

सुखदा—दूसरे की प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता मानना। मैं आजकल उनकी प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता मानती हूँ। जो कुछ वे कहते, या करते हैं, उसका आँख बन्द करके समर्थन करती हूँ। इससे मुझे अब दुःख हो ही नहीं सकता। सदा सुखी रहने का शायद इससे अच्छा और कोई मार्ग नहीं है कि मनुष्य अपना एक इष्ट बनाकर उसके सुख में सुखी रहे। इसीलिए तो, रामदेई, भगवान के भक्तों को कभी दुःख नहीं होता। वे हमेशा ही सुखी और प्रसन्न रहते हैं। हिन्दू पत्नी के लिए पति ही भगवान् का स्वरूप है। तुझे याद होगा कि जब उन्होंने वकालत छोड़ी, उस वक्त तीन दिनों तक मैं कितनी दुःखी रही थी ?

रामदेई—.खूब अच्छी तरह याद है। वे दुःख के दिन मैं कभी भूल सकती हूँ ?

सुखदा—उस समय मैं तुझसे कहा करती थी कि इस घर का सुख नष्ट हो जायगा ?

रामदेई—इसकी तो आपको रट-सी हो गयी थी, मालकिन।

सुखदा—पर अब मुझे विश्वास होता है कि कदाचित् इस गृह का सुख रह सकेगा।

रामदेई—आप अपनी तपस्या से रखेंगी, मालकिन। दूसरे के सुख में सुख मानना, अपनी कभी कोई परवाह न करना, यह छोटी बात नहीं है। भगवान के भक्तों की दूसरी बात है।

सुखदा—भगवान के भक्तों का दूसरा बात कैसे है ?

रामदेई—इसलिए कि भगवान् को किस बात में सुख है, वह भक्तों को थोड़े ही मालूम रहता है; ज्यादा करके तो भक्तों के मन में जिस बात से सुख होता है, उसी से भगवान् भी सुखी होते होंगे, यह वे मान लेते हैं, पर, मालकिन, किसी दूसरे आदमी के सुख में सुख मानना तो बड़ी मुश्किल बात है।

सुखदा—क्यों ?

रामदेई—क्योंकि आदमी को आज एक बात में सुख होता है, कल दूसरी में। उसके सुख के साथ अपने मन को भी रोज़ बदलना पड़ता है, यह तो बड़ी ही मुश्किल बात

है। चाहे पति हो, चाहे कोई भी हो, मालकिन, किसी के सुख में अपना सुख मानना! ओह! यह मुश्किल, बड़ी मुश्किल बात है।

सुखदा—पर, रामदेई, भक्त भी अपने मन को जिस से सुख होता है उसी से भगवान् को भी सुख होता होगा वह सदा नहीं मान सकता। तूने कहा न कि मनुष्य के हृदय के भाव तो निरन्तर बदलते हैं। भक्त को यह मानना ही पड़ता है कि भगवान् को अच्छी भावनाओं और अच्छी कृतियों से ही सुख होता है, अतः उनका भी भगवान् के सुख में अपना सुख मानना सहज नहीं है।

रामदेई—अच्छी बातों से भगवान् को सुख होता है, इतना तो भक्त के लिए पक्का रहता है न, मालकिन?

सुखदा—(कुछ सोचकर) हाँ, इतना तो पक्का रहता है।

रामदेई—तो भगवान् के भक्त को अपना मन ऐसा बनाना पड़ता है, जिससे उसे अच्छी बातों में सुख मिले।

सुखदा—ज़रूर।

रामदेई—और आदमी को तो कभी अच्छी और कभी बुरी दोनों ही तरह की बातों से सुख होता है। इसलिए किसी दूसरे आदमी के सुख में सुख मानने वाले आदमी को कभी अच्छी बात में सुख मानना पड़ता है और कभी बुरी बात में। एक तरह की बात में सुख मानना

उतना मुश्किल नहीं है, जितना बदलती हुई बातों में। अब आप ही सोचें, भगवान् के भक्त का काम मुश्किल है या आदमी के भक्त का ?

सुखदा—(कुछ सोच कर मुस्कुराते हुए) तू तो बड़ी पंडिता हो गई, रामदेई ?

रामदेई—(लंबी साँस लेकर) नहीं, मालकिन, पंडिता की बात नहीं है। मैंने भी कभी किसी के सुख में अपना सुख मानने की कोशिश की थी, पर वह कोशिश पूरी न पड़ी। आखिर को मैंने भगवान् की भक्ति की, वह उतनी मुश्किल नहीं मालूम हुई।

सुखदा—अच्छा तो तेरा भी कोई प्रेमी था ?

रामदेई—(लंबी साँस लेकर) उस बात को याद न करना ही ठीक है, मालकिन, आपके पास नौकर रहने के पहले मैं भी यह सब भोग चुकी हूँ।

[दाहिनी ओर द्वार से यशपाल का प्रवेश। उसका मुख अत्यन्त उदास और उतरा हुआ है। वह आते ही बीमार मनुष्य के सदृश कुरसी पर बैठ जाता है। रामदेई बाईं तरफ के दरवाज़े से बाहर चली जाती है।]

सुखदा—तो अन्त में तुम्हारी विजय हो गयी !

यशपाल—वह तो होने ही वाली थी।

सुखदा—फिर भी उसका निश्चित फल तो अभी मालूम हुआ न ?

यशपाल—हाँ, अभी थोड़ी देर पहले।

सुखदा—होने वाली बात के भी हो जाने पर प्रसन्नता तो होती ही है। (ध्यान से यशपाल का मुँह देखते हुए) लेकिन तुम्हारे मुँह पर उसके कोई भी चिन्ह नहीं दीखते; बल्कि तुम तो आज अत्यन्त ही उदास दीख पड़ते हो। (कुछ घबरा कर) क्यों तबियत तो ठीक है न ?

यशपाल—हाँ, ठीक ही है; (कुछ रुककर) थक गया होऊँगा।

सुखदा—(यशपाल के मुँह को और भी ध्यान से देखते हुए) नहीं, थकी हुई मुद्रा तो नहीं है। मैं तो तुम्हारी प्रत्येक मुद्रा से पूरी-पूरी परिचित हूँ, मुँह पर अत्यधिक चिन्ता झलक रही है।

[यशपाल कुछ उत्तर न देकर चुपचाप लंबी साँस लेता है। उसके नेत्रों में आँसू भर आते हैं।]

सुखदा—(उठकर उसके निकट आ घबरा कर) हैं ! क्या बात है ? तुम्हारे नेत्रों में तो आँसू-से आ रहे हैं।

यशपाल—ओह !

सुखदा—(जल्दी से) हाँ, कहो न, क्या कोई ऐसी बात है, जो मुझ से भी नहीं कह सकते ?

यशपाल—तुमसे न कहूँ ऐसी कोई बात हो हो नहीं सकती, लेकिन कहने में संकोच होता है। (सिर झुका लेता है।)

सुखदा—(यशपाल की ठुड्डी में हाथ लगा कर, मुँह ऊँचा करते हुए) मुझसे संकोच ?

यशपाल—संकोच न सही, यह समझ लो कि हिम्मत नहीं पड़ती।

सुखदा—इसका मैं क्या उत्तर दूँ ? अगर तुम मुझसे किसी बात के कहने का साहस नहीं कर सकते तो फिर किससे कह सकते हो ? तुम जानते हो, बिना बात को प्रकट किए और ज्यादा दुःख होता है। सच्चे प्रेमियों का सबसे बड़ा सुख ही यह है कि वे एक दूसरे से अपनी सब बातें कह सकते हैं और एक दूसरे की स्पष्ट सम्मति से कार्य-क्रम निर्धारित कर सकते हैं। यदि मुझे तुम अब भी अपने प्रेम के योग्य नहीं समझते तो.....

यशपाल—(बीच ही में) तुम योग्य नहीं हो, यह बात नहीं है, पर तुम्हारा एक अत्यन्त अयोग्य से सम्बन्ध हो गया है, यह अब निश्चित है।

सुखदा—(आँखों में आँसू भर कर) यह न कहो, यह न कहो, यह न कहो, मैंने तुम्हें सदा योग्य और ईश्वर के समान योग्य माना है।

यशपाल—एक बार ब्रह्मदत्त की ईर्षा के समय मेरी अयोग्यता तुम्हें दिखी थी, पर वह तो तुमने क्षमा कर दी। अब जो कुछ मैंने किया है, वह सुनकर तो शायद तुम मुझे कभी भी माफ़ न करोगी।

सुखदा—(भर्राए हुए स्वर में) अब तुम मेरे लिए सदा योग्य रहोगे, चाहे तुम कुछ भी क्यों न करो। तुम्हारी योग्यता के सम्बन्ध में मेरे मन में सवाल ही नहीं उठ सकता।

यशपाल—तो सुन लो, काँग्रेस का जो ग्यारह सौ और कुछ रुपया मेरे पास रखा था, उसमें से पचीस-तीस रुपए को छोड़ बाक़ी सब का सब चुनाव में खर्च हो गया है। स्थायी काँग्रेस कमिटी का चुनाव हो गया है और वह रुपया कल ही मुझे कोषाध्यक्ष को सौंपना है। अनेक स्थानों से कर्ज़ लेने की कोशिश की, पर एक जगह को छोड़कर किसी ने पास तक न फटकने दिया। आज उस स्थान से भी सूखा जवाब मिल गया। कल मेरी सारी प्रतिष्ठा, सारी कीर्ति, मिट्टी में मिल जायगी। जिस ईर्षा के लिए तुम मुझे दोष दिया करती थीं उसी ईर्षा के वश अनेक काँग्रेसवादी, जिन्हें मेरी प्रतिष्ठा के सबब मुझसे जलन हो गयी है और वे वही काँग्रेसवादी हैं जिनके हाथ से मैंने वह रुपया खर्च कराया है, मुझ पर एक दानदाता के द्वारा खयानत का मुक़दमा चलवाने वाले हैं।

[सुखदा घबराती हुई लड़खड़ा कर एकाएक कुरसी पर बैठ जाती है। यशपाल सिर नीचा कर लेता है। सुखदा अपना मुँह हाथ पर रख गम्भीरता से कुछ सोचने लगती है। कुछ देर तक दोनों चुप रहते हैं।]

सुखदा—(सिर उठाकर) सचमुच तुमने बड़ी भयानक बात कर डाली।

यशपाल—मैंने तो पहले ही कह दिया था कि जो कुछ अब मैंने किया है उसके लिए तुम मुझे कभी माफ़ न करोगी।

सुखदा—मेरे क्षमा करने की बात नहीं है। सवाल तो यह है कि कल तक रुपए का इन्तज़ाम कर इस आपत्ति से बाहर क्योंकर निकला जाय।

यशपाल—(लंबी साँस लेकर) इसका कोई उपाय नहीं है।

सुखदा—(कुछ सोचते हुए) नहीं, मैं इसका उपाय करने की कोशिश करूँगी।

यशपाल—तुम! तुम कोशिश करोगी? तुम इसका क्या प्रयत्न कर सकती हो?

सुखदा—देखो, (अपने गले का हार उतार कर इअरिंग उतारते हुए) मेरे ये सोने के ज़ेवर हैं। तुम जानते हो विवाह के समय इन्हें माता जी ने मुझे दिया था। (हाथों

के सोने के कड़े भी उतार सबों को हाथ पर तौलते हुए) ये सब मिलकर शायद पाँच सौ रुपए के लगभग में बिक जायँगे।

यशपाल—(आँखों में आँसू भर कर) ओहो ! ओह ! मैं इस जीवन में तुमसे कभी उऋण हो सकूँगा ?

सुखदा—तुम्हारा इस तरह की बातें सोचना मेरे प्रति घोर अन्याय करना है। यह शरीर तुम्हारा है, यह आत्मा तुम्हारी है, फिर इन गहनों की क्या क़ीमत है ?

यशपाल—लेकिन ये सब तो पाँच सौ रुपये के होंगे; मुझे तो ग्यारह सौ रुपए चाहिए।

सुखदा—सौ डेढ़ सौ रुपए के लगभग नक़द मेरे पास पड़े हैं।

यशपाल—ये कहाँ से आये ?

सुखदा—जो रुपया तुम ख़र्च करने के लिए देते थे उससे किसी तरह भी बचा-बचाकर मैंने इतना इकट्ठा किया है।

यशपाल—(आश्चर्य से) उतने से रुपए में भी तुमने बचत कर ली ?

सुखदा—ज्यादा बचत करनी चाहिए थी, पर मैंने यह कभी सोचा ही न था कि तुम वकालत छोड़ोगे और ऐसा मौक़ा आयगा, वरन् मैं तो हमेशा यही सोचा करती

थी कि दिनों-दिन आमदनी में वृद्धि होगी, इसलिए खुले हाथ से ही खर्च किया, अगर अधिक सावधानी रखती तो ज्यादा बचा लेती।

यशपाल—फिर भी पाँच सौ की कसर रहती है।

सुखदा—वे पाँच सौ मैं ग़रीबदास जी से लाने की कोशिश करूँगी।

यशपाल—(कुछ सोचकर) अगर पाँच सौ ही उनसे लाना है तो हज़ार ही न ले आओ; क्यों ज़ेवर बेचते हो ?

सुखदा—इतना उनके पास न होगा। तुम जानते हो, वे भी जो कुछ कमाते हैं ग़रीबों की सेवा में खर्च कर देते हैं।

यशपाल—तब पाँच सौ भी उनके पास निकल आवेंगे, यह कैसे कहा जा सकता है ?

सुखदा—यदि उनके पास न भी निकले तो वे कहीं से इन्तज़ाम कर देंगे।

यशपाल—तुम्हें इसका विश्वास है ?

सुखदा—(कुछ सोचते हुए) विश्वास है यह तो नहीं कह सकती, लेकिन पूरी-पूरी आशा अवश्य है।

यशपाल—(प्रसन्न होकर) तुम्हारी पूरी आशा का अर्थ ही विश्वास है। (कुछ ठहर कर) तुमने मेरी प्रतिष्ठा बचा ली।

सुखदा—जैसे तुम्हारी प्रतिष्ठा मेरी प्रतिष्ठा नहीं है !

यशपाल—(उठकर सुखदा के निकट जा उसका मुह चूमते हुए) तुम मानवी नहीं देवी हो।

सुखदा—(आँखों में आँसू भर कर) बस इसी प्रकार सदा प्रेम रखना, यह मेरी प्रार्थना है। देखो प्रेम में अगर कोई सब से ज्यादा दुखदायक चीज है तो वह प्रेम-पात्र द्वारा की गयी अवहेलना।

यशपाल—(कुछ ठहर कर सोचते हुए) तुम जानती ही मैंने अपने भविष्य के जीवन के सम्बन्ध में क्या निर्णय किया है ?

सुखदा—क्या ?

यशपाल—इस ईर्षा और व्यक्तिगत महत्त्व को मैं हृदय से उखाड़ कर फेंक दूँगा। सच्ची देश-भक्ति से देश को स्वतन्त्र करने का प्रयत्न, और सच्ची जन-भक्ति से क्षुधित, दलित और रुग्णों की सेवा करूँगा।

सुखदा—(गद्गद स्वर से) धन्य मेरा भाग्य !

[उठकर यशपाल से लिपट जाती है। यशपाल पुनः उसका मुँह चूमता है। दोनों कुछ देर तक योंही खड़े रहते हैं।]

यशपाल—(अलग कुरसी पर बैठते हुए) ग़रीबदास जी के यहाँ कब जाओगी ?

सुखदा—(दूसरी कुरसी पर बैठते हुए) अभी थोड़ी देर में।

यशपाल—तो अभी तो अपने गहने पहन लो। पहले तो ग़रीबदास जी से हज़ार का इन्तज़ाम करने को ही कहना। न हो सके तो गहने रहन धर देंगे। बेंचना नहीं है। सेठ जमनालाल के रुपए में से जो सौ रुपया मासिक मिलेगा उसमें से थोड़ा-थोड़ा बचा कर धीरे-धीरे एक-एक करके ज़ेवर छुड़ा लेंगे।

सुखदा—(ज़ेवर पहनते हुए) हाँ, अभी तो पहने लेती हूँ, किन्तु न तो ग़रीबदास जी से एक हज़ार के लिए कहना ठीक है और न ज़ेवर रहन करना ठीक है।

यशपाल—ग़रीबदास जी से एक हज़ार के लिए कहना अगर तुम अनुचित समझती हो तो न कहो, किन्तु गहने रहन करने में क्या हर्ज है ?

सुखदा—पहले तो सेठ जमनालाल बजाज कॉंग्रेस को रुपया देने वाले हैं, यह एक उड़ता हुआ समाचार है, फिर अगर उन्होंने रुपया दिया भी तो उसमें तुम्हें मिलेगा ही यह भी निश्चित नहीं है, फिर यदि तुम्हें मिल भी गया तो सौ रुपए में से कुछ भी नहीं बच सकता; अतः ज़ेवर रहन कर ब्याज का बोझ सिर पर लाद लेना मूर्खता के सिवा और कुछ न होगा।

[दाहिनी ओर के दरवाज़े से चंद्रभान का प्रवेश।]

चंद्रभान—पाँच बजे सार्वजनिक सभा। भाषण तैयार।

यशपाल—(चौंक कर) अच्छा ! आज तो मेरा पहला सार्वजनिक भाषण होना है। (चंद्रभान से) लिख तो डाला है, याद भी किया है, परन्तु किस तरह बोल सकूँगा, यह नहीं कह सकता।

सुखदा—(मुस्करा कर) एक बार शीशे के सामने खड़े होकर बोल क्यों नहीं लेते ?

यशपाल—(हँसते हुए) क्या रिहर्सल करूँ ?

चंद्रभान—हर्ज क्या ? अच्छी बात।

यशपाल—(उठ कर टेबिल की घड़ी देख फिर बैठते हुए) अब समय नहीं है कि पूरा भाषण बोल सकूँ।

सुखदा—कम से कम जिन स्थानों पर ज़ोर देना है उन्हें ही बोल लो।

यशपाल—हाँ, यह ठीक है।

सुखदा—जब तक मैं चाह की तैयारी करती हूँ।

यशपाल—अच्छी बात है। (सुखदा का प्रस्थान। सुखदा के जाने पर) क्यों, भाई, फिर ग्यारह सौ रुपए का कुछ हुआ ?

चंद्रभान—(मुँह बिचका कर और हाथ हिला कर) कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं।

यशपाल—तब कल क्या होगा ?

चंद्रभान—(लंबी साँस लेकर) क्या कहूँ ? क्या कहूँ ?

यशपाल—अच्छा अभी तो भाषण की तैयारी कर लूँ। सभा से लौटकर फिर सोचना होगा।

चंद्रभान—बराबर, बराबर।

[यशपाल उठकर टेबिल की दराज़ में से लिखा हुआ भाषण निकालता है।]

यशपाल—(उसे देखते हुए चन्द्रभान से) इसके मुख्य स्थानों में मैंने लाल पेंसिल से निशान लगा लिये हैं। उन्हीं को बोलता हूँ। शीशे के सामने नहीं, तुम्हारे सामने बोलता हूँ। तुम देखना कैसा प्रभाव पड़ता है।

चंद्रभान—अच्छा बात, अच्छी बात।

[यशपाल चन्द्रभान की ओर मुख कर, टेबिल के एक ओर खड़ा होता है और लिखा हुआ भाषण अपने सामने रख लेता है।]

यशपाल—मैं पढ़ूँगा नहीं, मुँह से बोलूँगा। यह तो इसलिए सामने रख लिया है, कि मुख्य स्थल याद रहें।

चंद्रभान—ठीक, ठीक।

यशपाल—(खखार कर गला साफ़ करने के पश्चात् लिखे हुए भाषण को देख, पुनः सिर ऊँचा करते हुए, ज़ोर से) जिस देश में जन्म लेने के लिए कभी देवता तक तरसते थे उसी देश की पराधीनता के कारण कैसी दशा हो गयी है ? विदेशियों की लूट और अपनी निर्धनता के कारण इस देश के

निवासा (हाथ हिलाते हुए) पशुओं से भी निकृष्ट अवस्था में रहने को वाध्य हो गये हैं। (हाथ से टेबिल को ज़ोर से ठोंकता है।)

चंद्रभान—वाह, वाह ! क्या बात, क्या बात !

यशपाल—(फिर हाथ उठाते हुए, ज़ोर से) वे जिन गृहों में रहते हैं वे क्या गृह कहे जा सकते हैं ? उनके गृहों में न स्वच्छता है न प्रकाश और न शीत, घाम एवं वर्षा से बचने के पूरे साधन ! फिर उनको आप गृह कह सकते हैं ? कदापि नहीं। (पैर को पृथ्वी पर पटकता है।)

चंद्रभान—वाह वाह वाह ! क्या बात, क्या बात !

यशपाल—(फिर लिखा हुआ भाषण देखकर, सिर ऊँचा कर, हाथ उठाते हुए) वे मनुष्यों के खाने योग्य भोजन करते हैं ? अधिकांश लोग घास के सदृश खाना खाते हैं। जिसमें नीच जाति के कहे जाने वाले लोग जैसा भोजन करते हैं उसे देखकर तो रोमांच हो आता है। मैंने स्वयं देखा है कि वे लोग माँग-मांग कर जो भोजन लाते हैं उसे सुखाते तथा महीनों तक उबाल-उबाल कर खाते हैं। फिर ऐसा भोजन भी उन्हें भर पेट नहीं मिलता। (हाथ से पुनः टेबिल ठोंक देता है।)

यशपाल—वाह, वाह ! वाह, वाह !

यशपाल—(फिर हाथ ऊँचा उठाते हुए) यही दशा उनके वस्त्रों की है। जैसे चिथड़े वे पहनते हैं उनसे स्त्रियों

के शरीर तक नहीं ढकते और उन्हें विवश होकर निर्लज्जों के समान आधा नंगा रहना पड़ता है। वस्त्रों की इस कमी के कारण उनकी ठंड नहीं बचा सकती। ठंड के दिनों में वे जिस प्रकार काँपते रहते हैं उस काँपने को देखकर दृढ़ से दृढ़ हृदय भी काँप उठता है। (फिर पैर पटकता है।)

चंद्रभान—वाह, वाह ! वाह, वाह !

यशपाल—(फिर लिखे हुए भाषण को देख, सिर उठाकर, हाथ उठाते हुए) बच्चों को भी पूरा दूध और पूरे वस्त्र मयस्सर नहीं। जितने दुध-मुँहे बच्चे त्राहि-त्राहि और पाहि-पाहि करते हुए कुत्तों और बिल्लियों की मौत इस देश में मरते हैं उतने संसार भर में कहीं।

चंद्रभान—ठीक, ठीक।

यशपाल—यही तो कारण है कि इस देश के अधिकांश निवासियों को आनन्ददायिनी युवावस्था के सुख का अनुभव ही नहीं होता। तेरह वर्ष की अवस्था में वे सात वर्ष के दीखते हैं और बीस वर्ष की अवस्था में चालीस वर्ष के। रोग उन पर आक्रमण करने को तैयार रहता है। रोग के अवसर पर उन्हें औषधि तक नहीं मिलती। भूख के समय भोजन न मिलने, ठंड से बचने और लज्जा ढाँकने को वस्त्र न मिलने से भी कहीं अधिक कष्ट देनेवाली एक बात है, वह है रोग के अवसर पर औषधि न मिलना। इस प्रकार इस देश के निवासी अगणित और अवर्णनीय कष्टों को पाते हुए अल्पायु में ही काल के कराल मुख में

प्रवेश कर रहे हैं। आह! संसार में ऐसा कौन मनुष्य है जिसके नेत्रों से इनकी दशा का अवलोकन कर आँसू की झड़ी न लग जायगी। (हाथ से टेबिल ठोंकता है और पैर से पृथ्वी।) परन्तु, बन्धुओं! स्मरण रखिए कि एक दिन आएगा जब इन दुखियों की आहें झंझावात हो और इनके आँसू प्रलयंकरी वर्षा बन सारे समाज को.....

[दाहिनी ओर के द्वार से एक स्त्री का प्रवेश। वह युवती होने पर भी अत्यन्त दुबली-पतली है और मैले-कुचैले चिथड़े पहने है, जिससे उसके अंग-प्रत्यंग दीख रहे हैं। उसकी गोद में एक छोटा-सा बालक है; वह भी बहुत दुबला है, पर उसका पेट बढ़ गया है, बच्चा नंगा है।]

यशपाल—(रुक कर) हैं! यह कौन यहाँ घुस आया?

स्त्री—दाता, बड़ी दुखी हूँ, बड़ी दुखी हूँ। तीन दिन से खाने को नहीं पाया, यह बच्चा भी भूखा है, कपड़े भी नहीं हैं, दाता, ठंड में यह बच्चा और हम दोनों काँपे जाते हैं।

यशपाल—(क्रोध से) तो मैं क्या करूँ, बाबा, यहाँ कोई सदावर्त लगा है, या यह कोई लंगरखाना है कि तू इस तरह घुस आयी।

स्त्री—(डरती हुई) मैंने सुना है कि आपने गरीबों की रक्षा के लिए वकालत छोड़ी है, दाता। जब और कहीं कुछ नहीं मिला तब आपका घर पूछती-पूछती यहाँ आयी हूँ।

यशपाल—यहाँ इस प्रकार ग़रीबों की रक्षा नहीं होती। कोई काम करो, मज़दूरी करो। भीख माँगना तो तुम लोगों का धंधा हो गया है।

स्त्री—कहीं काम ही लगवा दो, दाता। कहीं काम भी तो नहीं मिलता।

यशपाल—चल, निकल यहाँ से। यहाँ ज़रूरी काम हो रहा है, फ़िज़ूल के लिए वक्त ले रही है।

स्त्री—(रोती हुई) तीन दिन की भूखी हूँ, दाता। बच्चा दो दिन का भूखा है।

यशपाल—(अत्यन्त क्रोध से) निकलती है या लातें लगायी जायँ ? (स्त्री को न जाते देख) ये दुष्ट तो बड़े ढीठ हो गये हैं। चन्द्रभान, निकालो इस दुष्टा को बाहर।

[चन्द्रभान उसे बाहर निकालने को उठता है। यह देखकर वह रोती हुई बाहर चली जाती है।]

यशपाल—इस दरवाज़े को बन्द कर दो, चन्द्रभान, नहीं तो और कोई आ पहुँचेगा; तुम जानते हो, जब से मैंने वकालत छोड़ी है, रोज़ यही लगा रहता है। कभी कोई भिखमंगा आकर कहता है, भोजन दीजिए, वस्त्र दीजिए, तो कभी कोई झगड़ालू टपक पड़ता है और कहता है, मेरा फ़लाँ-फ़लाँ का मुक़दमा चल रहा है, उसकी पंचायत करा दीजिए। कभी किसान यह कहने पहुँचते हैं कि हमारी जमा घटवा दीजिए तो कभी विद्यार्थी यह कहने आते हैं, कि हम

स्कूल छोड़ने को तैयार हैं, हमारे लिए राष्ट्रीय शिक्षा का इन्तज़ाम कीजिए; जैसे मेरा घर कोई कंगीरखाना, पंचायत, रेवेन्यू कोर्ट या स्कूल हो।

चंद्रभान—व्यर्थ की आशा, व्यर्थ की आशा।

[चन्द्रभान दाहिनी ओर का दरवाज़ा बंद कर देता है।]

यशपाल—(राइटिंग टेबिल की घड़ी देख पुनः अपने स्थान पर आकर खड़े हो।) ओह, कितना वक्त इस भिख-मंगिन ने खराब किया! खैर, अभी भी समय है। (कुछ ठहर कर) अच्छा तो और आगे सुनो। (लिखा हुआ भाषण देखकर, सिर उठाते हुए) हमारे देश के निवासियों की इस भीषण स्थिति का उत्तरदायित्व इस ज़ालिम सरकार पर है। (हाथ को बहुत ज़ोर से टेबिल पर पटकता है।)

चंद्रभान—बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, पर हाथ के साथ पैर भी; और ज़ालिम के साथ शैतान।

यशपाल—अच्छा, फिर सुनो। (हाथ उठाते हुए) हमारे देश के निवासियों की इस स्थिति का सारा उत्तर-दायित्व इस ज़ालिम और शैतान सरकार पर है। (हाथ को और भी ज़ोर से टेबिल पर पटकता है और पैर को ज़मीन पर)

चंद्रभान—बराबर, बराबर; अब ठीक।

यशपाल—इस सरकार से किसी भी प्रकार का सह-योग करना.....

[बाहर से कोई दाहनी ओर के दरवाज़े को भड़भड़ाता है।]

यशपाल—आह ! फिर कोई आया ! (दरवाज़ा भड़-भड़ाना जारी रहता है) देखो तो, चन्द्रभान, कौन है ?

चंद्रभान—(उठकर दरवाज़े के काँच से बाहर देखते हुए) ओ बच्चे, बच्चे, स्कूल से बच्चे !

[दरवाज़ा खोलता है । शकुंतला, ब्रजवल्लभ तथा नौकर का प्रवेश ।]

यशपाल—अच्छा, आ गये तुम लोग ? आज छुट्टी कुछ जल्दी हुई ?

शकुन्तला—नहीं, बाबू जी, रोज़ इसी वक्त तो होती है।

ब्रजवल्लभ—(आगे बढ़कर यशपाल से लिपटते हुए) बाबू जी, आज मुझे स्कूल में मार पड़ी।

यशपाल—क्यों, बेटा ?

ब्रजवल्लभ—सबक़ याद नहीं हुआ था। जब से मास्टर साहब नहीं आते, बाबू जी, तब से आपने तो मुझे दो-चार दफ़े ही पढ़ाया है। मेरा सबक़ ठीक तरह से याद होता ही नहीं।

शकुन्तला—और, बाबू जी, मुझे भी आप नहीं पढ़ाते, मेरा भी सबक़ याद नहीं होता; मुझ पर भी रोज़ डाँट पड़ती है।

यशपाल—(जल्दी से) अच्छा, अच्छा, कल प्रातःकाल से तुम दोनों को मैं बराबर पढ़ाऊँगा।

ब्रजवल्लभ—नहीं, बाबू जी, अभी पढ़ा दीजिए, कल सुबह फिर आप कहीं चले जायँगे।

यशपाल—(और भी जल्दी से) बेटा, अभी मुझे दूसरा काम है।

ब्रजवल्लभ—नहीं, बाबू जी मैं तो अभी पढ़ूँगा। (ठिनठिनाता है।)

यशपाल—ऐसी ज़िद नहीं करना चाहिए।

ब्रजवल्लभ—ऊँ हूँ, बाबू जी, मैं तो अभी.....

यशपाल—(और भी क्रोध से नौकर को) काशीराम, इन दोनों को भीतर ले जाओ, मैं बहुत ज़रूरी काम कर रहा हूँ।

ब्रजवल्लभ—देखूँ, काशीराम, मुझे कैसे ले जाता है ?

यशपाल—क्यों, ब्रज, नहीं मानेगा ?...पिटना है क्या ?

[जब ब्रजवल्लभ फिर भी नहीं मानता तो यशपाल उसे एक चपत लगाता है। ब्रजवल्लभ रोता है। काशीराम उसे गोद में चढ़ा लेता है और शकुंतला की उँगली पकड़ बाएँ दरवाज़े से बाहर चला जाता है।]

यशपाल—(जाकर टेबिल की घड़ी देख) ओह ! कितना वक्त और गया, आज न जाने कैसा मुहूर्त है ? ख़ैर अभी भी थोड़ा बहुत समय है। हाँ तो, (फिर उसी स्थान पर आ, उसी तरह खड़े होकर) इस सरकार से किसी भी प्रकार का

सहयोग करना; केवल अनुचित ही नहीं है, घोर अधर्म है। महात्मा गाँधी का असहयोग...

[दाहिनी ओर के दरवाज़े से शीघ्रतापूर्वक एक नवयुवक का प्रवेश।]

यशपाल—(उसे देख एकदम आग बबूला होकर) अजी जनाब, मेरा घर है या कोई धर्मशाला, सराय, मुसाफ़िर-खाना या डाक बंगला ? (चन्द्रभान से) तुमने लड़कों के आने के बाद दरवाज़ा नहीं लगा दिया ?

आगन्तुक—आप इस शहर के नेता हैं, महाशय, इसलिए मैंने आपको तकलीफ़ देने का साहस किया है।

यशपाल—(कुछ शान्त होकर) आप और किसी वक्त आइए। इस समय तो मुझे मरने की भी फ़ुरसत नहीं है। ठीक पाँच बजे मुझे एक सार्वजनिक सभा में जाना और भाषण देना है।

आगन्तुक—इसकी अपेक्षा मेरा कार्य कहीं ज्यादा ज़रूरी है, महाशय।

यशपाल—(फिर क्रोध से) जो आता है, यही कहता आता है, पर मेरा जो आवश्यक कार्य रहता है, उसे कोई नहीं देखता।

आगन्तुक—आप नेता हैं, अब आप अपनी नहीं, लेकिन जनता की संपत्ति हो गये हैं।

यशपाल—पर, भाई साहब, इस वक्त मुझे थोड़ा भी....

आगन्तुक—(बीच ही में) इतने समय में तो आपने मेरी बात ही सुन ली होती। मैं आपके दो मिनिट से ज्यादा न लूँगा। विश्वास न हो तो घड़ी देखकर दो मिनिट दे दीजिए।

यशपाल—अच्छा, अच्छा, शीघ्र कहिए, क्या काम है ?

आगन्तुक—बिलकुल एकान्त में कहूँगा।

यशपाल—(चन्द्रभान की ओर संकेत कर) इनमें और मुझमें कोई फ़र्क़ नहीं है।

आगन्तुक—फिर भी......

यशपाल—(बीच ही में) आप नाहक़ वक़्त खराब कर रहे हैं, मैंने कहा न, इनमें और मुझमें कोई फ़र्क़ नहीं है। अगर आप मुझसे अकेले में भी कुछ कहेंगे तो मैं इनसे कह दूँगा।

आगन्तुक—अच्छी बात है, यदि आपका इन पर इतना विश्वास है तो मैं भी इनका विश्वास कर लेता हूँ।

यशपाल—आप बैठ जाइए।

[यशपाल बैठ जाता है और आगंतुक नवयुवक भी बैठ जाता है। तीनों इस प्रकार बैठते हैं कि बाएँ दरवाज़े की तरफ़ इनकी पीठ हो जाती है। सुखदा का चाह के सामान की रिकाबी लिए हुए प्रवेश। उसे वे लोग नहीं देख पाते। वह एक नवीन मनुष्य को देख रुक जाती है।]

आगन्तुक—महाशय, मेरा नाम बाँकेबिहारी है। मैं क्रान्तिकारी दल का एक कार्य-कर्त्ता हूँ। पुलिस ने मेरी गिरफ़्तारी के लिए एक हज़ार रुपए का इनाम घोषित किया है। मैं इधर-उधर भागता फिर रहा हूँ। आज इस शहर में आया हूँ। धर्मशाला, सराय इत्यादि में मैं नहीं ठहर सकता। दो-चार दिनों का आश्रय चाहिए। आप यहाँ के नेता हैं, आपसे आश्रय की भिक्षा माँगता हूँ।

यशपाल—(कुछ सोचते हुए) मुझे आपको आश्रय देने में कोई आपत्ति नहीं था, लेकिन मेरा घर तो धर्मशाला और सराय से ज्यादा सार्वजनिक हो गया है। यहाँ पर आप सुरक्षित न रह सकेंगे और अगर पुलिस को यह पता लग गया कि आप मेरे यहाँ हैं तो मैं भी फँस जाऊँगा। आप जानते हैं सरकार की यों ही मुझ पर क्रूर दृष्टि हो गयी है।

आगंतुक—फिर कोई स्थान बताइए, जहाँ पर मुझे आश्रय मिल जाय।

यशपाल—(कुछ सोचते हुए) देखिए, यहाँ एक गरीबदास नाम के वैद्य रहते हैं। वे बड़े दयालु हृदय के मनुष्य हैं। हरेक को हर तरह की मदद पहुँचाना उनका काम ही है। अगर आप उनके यहाँ चले जाएँ तो बिना किसी भी जानकारी के दो-चार दिन सहज में रह सकते हैं। उनके यहां अनेक रोगी रहते हैं, अतः आपके रहने की किसी को कानोंकान खबर ही न होगी।

आगंतुक—वे कहाँ रहते हैं ?

यशपाल—चौक के नज़दीक एक गली में उनका मकान है। मशहूर आदमी हैं। वहाँ किसी से भी पूछने पर पता लग जायगा।

आगंतुक—अच्छी बात है। धन्यवाद। माफ़ कीजिए कि आपका वक़्त लिया।

यशपाल—नहीं, नहीं, कोई बात नहीं, मुझे क्षमा कीजिए कि ज़रूरी काम होने के सबब मैंने आपको समय देने में इतनी आनाकानी की।

[आगन्तुक का शीघ्रता से प्रस्थान।]

चन्द्रभान—(युवक के जाने पर धीरे से) एक हज़ार, एक हज़ार ! लो, एक हज़ार अब !

[शीघ्रता से बाहर जाता है। इसका उपर्युक्त वाक्य कहना और बाहर जाना दोनों लगभग एक साथ ही होते हैं। इसका वाक्य सुनते ही सुखदा के हाथ की चाह के सामान की रिकाबी उसके हाथ से छूट कर जमीन पर गिर पड़ती है। कई बर्तन फूट जाते हैं। उसकी आवाज से यशपाल चौंककर उठ खड़ा होता है।]

सुखदा—(आगे बढ़कर, एकदम भर्राए स्वर में) आह ! आह ! यह सब क्या हो रहा है ? क्या हो रहा है ? क्या एक हज़ार रुपए के लिए अब यहाँ तक नीचे गिरने की

स्थिति आ गयी ? मैंने तो उस इन्तज़ाम की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी न ?

यशपाल—(घबराकर)—लेकिन, मैंने थोड़े ही चन्द्रभान से·····

सुखदा—आह ! पर तुमने उसे रोका क्यों नहीं ?

यशपाल—मेरा जवाब पाये बिना ही तो वह चला गया।

सुखदा—तुमने उसे दौड़कर पकड़ क्यों न लिया ? मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपना व्यक्तित्व ही तुमसे अलग न करूँगी, पर मैं देखती हूँ कि मैं उससे विचलित हो रही हूँ। उससे विचलित होने के सबब जो घोर दुःख मुझे हो रहा है, वह मैं बता नहीं सकती, पर करूँ क्या ? लाचार-सी हूँ। (कुछ ठहर कर) खड़े हो, अभी भी तुम खड़े हो, और कहते हो कि चन्द्रभान तुम्हारा उत्तर पाये बिना ही चला गया।

यशपाल—(झुँझला कर) फिर मैं क्या करूँ ?

सुखदा—जाओ, जाओ, उस चन्द्रभान को रोको। या तो वह कोतवाली में मिलेगा, या वहाँ से गरीबदास के घर चला गया होगा, क्योंकि वहीं तो तुमने उस क्रान्तिकारी को भेजा है। दोनों ही जगह न मिले तो सारे शहर में दौड़ो, ज़मीन-आसमान एक करो, पर उसे रोको, उसे रोको !

यशपाल—(टेबिल की घड़ी देखते हुए) किन्तु वह तो

साइकिल पर गया होगा, मैं उसे कहाँ ढूढूँगा और फिर पाँच बज रहे हैं, मुझे सार्वजनिक सभा में जाना है। आज मेरा सार्वजनिक भाषण है।

सुखदा—(क्रोध से) ऐसी हज़ार सार्वजनिक सभाओं और लाख भाषणों की अपेक्षा चन्द्रभान को रोकना अधिक आवश्यक है। इसका यह मतलब न समझना कि मुझे क्रान्तिकारी आन्दोलन से कुछ सहानुभूति है, परन्तु रुपये के लिए तुमने किसी क्रान्तिकारी को गिरफ़्तार कराया, यह कलङ्क मैं तुम्हारे सिर पर नहीं लगने देना चाहती।

यशपाल—किन्तु चन्द्रभान अगर कुछ करे तो उसकी ज़िम्मेदारी मेरे सिर पर क्योंकर आ सकती है?

सुखदा—चन्द्रभान और तुम अलग-अलग हो इस पर कोई विश्वास ही नहीं कर सकता। फिर कोई कुछ भी विश्वास करे इससे हमें मतलब भी तो नहीं है। हमारी आत्मा हमें क्या कहेगी? ईश्वर के सामने हम क्या जवाब देंगे?

यशपाल—पर, पर·····

सुखदा—(बीच ही में क्रोध से) ओह! यह वाद-विवाद का वक्त नहीं है, वाद-विवाद के लिए फ़ुरसत ही नहीं है। जाओ, जाओ चन्द्रभान को रोको, फ़ौरन रोको, जहाँ कहीं मिले ढूँढ़ कर रोको।

यशपाल—लेकिन, सार्वजनिक सभा में मेरा न जाना तो असम्भव·····

सुखदा—(और भी क्रोध से) अच्छी बात है, जाइए, आप सार्वजनिक सभा में पधारिए। मैं ही चन्द्रभान को ढूँढ़ निकालती हूँ। देखती हूँ, मैं इस सम्बन्ध में क्या कर सकती हूँ। (शीघ्रता से दाहिनी ओर के दरवाज़े की ओर जाती है।)

यशपाल—(आगे बढ़ते हुए) सुनो,··· सुनो तो··· आह !······ मैं ही जाता हूँ। मैं सार्वजनिक सभा में न जाऊँगा।

[सुखदा बिना कोई उत्तर दिये बाहर चली जाती है। पीछे-पीछे यशपाल भी द्वार से बाहर निकलने लगता है।]

यवनिका

चौथा अंक

स्थान—कचहरी

समय—दोपहर

[मजिस्ट्रेट की कचहरी दिखायी देती है। सामने मजिस्ट्रेट की बैठक का तख्त है, जिस पर उसकी कुरसी और टेबिल लगी है। एक तरफ़ अभियुक्तों के खड़े होने का कठघरा और दूसरी ओर सिरिश्तेदार की बैठक है। मजिस्ट्रेट के तख्त के कठघरे के सामने वकीलों के बैठने की बेंचें हैं। कचहरी इस समय खाली है—केवल एक चपरासी इधर-उधर घूम रहा है। सामने की दीवार पर घड़ी है। यशपाल और सुखदा का प्रवेश। दोनों की मुद्रा अत्यन्त चिन्तित है; जिसमें सुखदा की तो सारी प्रसन्नता नष्ट हो गयी है। उसके मुख पर घोर उदासी और उद्विग्नता का साम्राज्य दिखायी देता है। इन्हें देख चपरासी सलाम करता है और बाहर चला जाता है।]

यशपाल—(घड़ी की ओर देख कर) देखो, मैंने कहा था न कि अभी बहुत जल्दी है। एक आदमी भी तो अब तक नहीं आया। तुम तो इतनी शीघ्रता करती थीं जिसका ठिकाना नहीं।

सुखदा—आज भी जल्दी न करती! क्या शीघ्रता करने का इससे बड़ा भी कोई दिन आ सकता है? (कच-

हरी के चारों ओर देख कर, उत्तेजित हो) आज इस जगह हम लोगों के दोष के सबब एक निर्दोष मनुष्य दण्ड पावेगा और उस दृश्य को दर्शक के रूप में देखने की भी मैं शीघ्रता न करती ।

यशपाल—शान्ति ।

सुखदा—(उसी प्रकार उत्तेजना में) क्या शान्ति यथार्थ में इस घोर कांड के हम लोग उत्तरदाता हैं । मेरी आँखों के सामने तो आठों पहर और चौसठों घड़ी उस दिन की सब घटनाएँ घूमती रहती हैं—न जागते चैन है, न सोते ।

यशपाल—(जल्दी से बीच में) लेकिन उन बातों···

सुखदा—(बिना यशपाल की बात पर ध्यान दिये अपनी धुन में) अभी भी मुझे दीख रहा है कि किस तरह तुमने उस क्रान्तिकारी को गरीबदास जी के यहाँ भिजवाया और कैसे मैं दौड़ती हुई उनके घर पहुँची । किस प्रकार मैंने उसे वहाँ से भागने को कह जल्दी से गरीबदास जी के घर के भीतरी भाग में प्रवेश किया । कैसे मेरे वहाँ से हटते ही पुलिस ने आ खिड़की से कूद कर भागते हुए क्रान्तिकारी तथा उसे आश्रय देने के अपराध में गरीबदास जी को गिरफ्तार···

यशपाल—(जल्दी से बीच ही में) चुप, चुप ! अब इन बातों को याद करने और बार-बार दुहराने से लाभ क्या है ? अगर तुम्हारा यह हाल रहा तो मुझे डर है कि कहीं

तुम पागल न हो जाओ ! फिर घर की दूसरी बात है यह तो कचहरी है। अभी तो यह भी कोई नहीं जानत कि मेरे मुन्शी का इस झगड़े में कोई हाथ है, यदि तुम इन बातों को हर जगह यों बकने लगीं तो मेरी सारी प्रतिष्ठ नष्ट हो जायगी।

सुखदा—प्रतिष्ठा ! प्रतिष्ठा ! ओह ! तुम्हें प्रतिष्ठा क कितना मोह हो गया है ? ईर्षा से इस प्रतिष्ठा की भावन का आरम्भ हुआ और अब भले-बुरे किसी भी तरह वे उपायों से इसे स्थित रखना तुमने जीवन का ध्येय बन लिया। इस स्वार्थ-पूर्ति के लिए और क्या-क्या करोगे ! ब्रह्मदत्त का तो तुम्हारे साथ बुरा व्यवहार था, इसलिए उसे नीचा दिखाया, पर बेचारे वृद्ध गरीबदास जी ने तुम्हार क्या बिगाड़ा था ? जब निश्चित नैतिक सिद्धान्तों के पथ से जीवन-शकट विचलित होता है, तब वह शायद अंधतम गर्त में गिरे बिना बीच में रुकता नहीं···

यशपाल—(बीच ही में) मैंने उस क्रांतिकारी को गरीबदास के यहाँ इसलिए नहीं भेजा था कि गरीबदास इस झगड़े में फँस जायँ। मैंने तो उसे सच्ची मदद पहुँचाने की कोशिश की थी। मैंने चन्द्रभान से नहीं कहा था कि वह उस क्रांतिकारी को गिरफ़्तार करवा दे। फिर उस सार्व जनिक सभा में अपने प्रथम भाषण का मोह छोड़ कर मै चन्द्रभान को मना करने भी निकला था। वह न मिला तो मैं क्या करता ?

सुखदा—लेकिन तुम्हारे और मेरे प्रयत्न का फल तो कुछ न निकला। ठीक वक्त जो कार्य नहीं किया जाता उसका क्या फल हो सकता है? (ज़ोर से) आह!···मैं क्या करूँ, क्या करूँ?

यशपाल—(घबराकर) जान पड़ता है तुम तो सचमुच पागल होती जा रही हो। मैं समझता हूँ, हम लोगों को घर लौट चलना चाहिए।

सुखदा—(कुछ शांत होकर) घर! बिना गरीबदास जी का मुकदमा देखे, घर! असंभव, सर्वथा असंभव है।

यशपाल—फिर ईश्वर के नाम पर थोड़ी शांत रहो। घर चलकर जितनी गालियाँ मुझे देना हो, उतनी दे लेना; यहाँ तो कृपा करो। (कुछ ठहर कर) तुमने प्रतिज्ञा की थी न कि चाहे मैं कुछ ही क्यों न करूँ, तुम मेरी हर बात का समर्थन करोगी। अगर मैं रात को दिन और दिन को रात कहूँगा तो तुम भी वही कहोगी। अपना व्यक्तित्व पूर्ण रीति से मुझमें विलीन कर दोगी।

सुखदा—(चौंक कर) की थी, अवश्य की थी। मुझे क्षमा करो। मैं इस कचहरी को देखकर और यह सोचकर कि हम लोगों के अपराध के सबब इस जगह पर आज निरपराध गरीबदास जी को दंड होगा, एकाएक उत्तेजित हो उठी थी। उस दिन की बातें और भविष्य की कल्पनाओं में सब कुछ भूल गयी थी। सचमुच मैं पागल के समान

तुम पागल न हो जाओ ! फिर घर की दूसरी बात है। यह तो कचहरी है। अभी तो यह भी कोई नहीं जानता कि मेरे मुन्शी का इस झगड़े में कोई हाथ है, यदि तुम इन बातों को हर जगह यों बकने लगीं तो मेरी सारी प्रतिष्ठा नष्ट हो जायगी।

सुखदा—प्रतिष्ठा ! प्रतिष्ठा ! ओह ! तुम्हें प्रतिष्ठा का कितना मोह हो गया है ? ईर्षा से इस प्रतिष्ठा की भावना का आरम्भ हुआ और अब भले-बुरे किसी भी तरह के उपायों से इसे स्थित रखना तुमने जीवन का ध्येय बना लिया। इस स्वार्थ-पूर्ति के लिए और क्या-क्या करोगे ? ब्रह्मदत्त का तो तुम्हारे साथ बुरा व्यवहार था, इसलिए उसे नीचा दिखाया, पर बेचारे वृद्ध गरीबदास जी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ? जब निश्चित नैतिक सिद्धान्तों के पथ से जीवन-शकट विचलित होता है, तब वह शायद अंधतम गर्त में गिरे बिना बीच में रुकता नहीं···

यशपाल—(बीच ही में) मैंने उस क्रांतिकारी को गरीबदास के यहाँ इसलिए नहीं भेजा था कि गरीबदास इस झगड़े में फँस जायँ। मैंने तो उसे सच्ची मदद पहुँचाने की कोशिश की थी। मैंने चन्द्रभान से नहीं कहा था कि वह उस क्रांतिकारी को गिरफ़्तार करवा दे। फिर उस सार्वजनिक सभा में अपने प्रथम भाषण का मोह छोड़ कर मैं चन्द्रभान को मना करने भी निकला था। वह न मिला तो मैं क्या करता ?

सुखदा—लेकिन तुम्हारे और मेरे प्रयत्न का फल तो कुछ न निकला। ठीक वक्त जो कार्य नहीं किया जाता उसका क्या फल हो सकता है? (ज़ोर से) आह!···मैं क्या करूँ, क्या करूँ?

यशपाल—(घबराकर) जान पड़ता है तुम तो सचमुच पागल होती जा रही हो। मैं समझता हूँ, हम लोगों को घर लौट चलना चाहिए।

सुखदा—(कुछ शांत होकर) घर! बिना गरीबदास जी का मुकदमा देखे, घर! असंभव, सर्वथा असंभव है।

यशपाल—फिर ईश्वर के नाम पर थोड़ी शांत रहो। घर चलकर जितनी गालियाँ मुझे देना हो, उतनी दे लेना; यहाँ तो कृपा करो। (कुछ ठहर कर) तुमने प्रतिज्ञा की थी न कि चाहे मैं कुछ ही क्यों न करूँ, तुम मेरी हर बात का समर्थन करोगी। अगर मैं रात को दिन और दिन को रात कहूँगा तो तुम भी वही कहोगी। अपना व्यक्तित्व पूर्ण रीति से मुझमें विलीन कर दोगी।

सुखदा—(चौंक कर) की थी, अवश्य की थी। मुझे क्षमा करो। मैं इस कचहरी को देखकर और यह सोचकर कि हम लोगों के अपराध के सबब इस जगह पर आज निरपराध गरीबदास जी को दंड होगा, एकाएक उत्तेजित हो उठी थी। उस दिन की बातें और भविष्य की कल्पनाओं में सब कुछ भूल गयी थी। सचमुच मैं पागल के समान

हो गयी थी। मुझे क्षमा करो, क्षमा करो। (कुछ ठहर कर) और देखो, अगर मुझे फिर उत्तेजना हो तो मेरी प्रतिज्ञा की याद दिला देना।

यशपाल—(घबराए हुए स्वर में) परन्तु, ऐसी मानसिक अवस्था में क्या यह मुनासिब न होगा कि हम लोग घर लौट चलें। इसीलिए मैं यहाँ आना ही उचित न समझता था। अब भी कहता हूँ, लौट चलो, लौट चलना ही उत्तम···

सुखदा—(बीच ही में) नहीं, नहीं, यह न कहो, यह न कहो! मैं कभी न लौटूँगी। गरीबदास जी का मुकदमा पूरा हुए बिना मैं यहाँ से एक क्षण को न हटूँगी।

[सुखदा एक कुरसी पर बैठ जाती है, दूसरी पर यशपाल बैठता है। दोनों कुछ देर चुप रहते हैं।]

सुखदा—क्यों तुम्हें उम्मीद है कि गरीबदास जी छूट जायँगे ?

यशपाल—मैंने तो तुमसे कई दफ़ा कहा, पर तुम्हें विश्वास ही नहीं होता तो मैं क्या करूँ ? तुम तो सदा अपने स्वप्नों में ही रहना चाहती हो, मानो प्रत्यक्ष संसार से तुम्हारा कोई संबंध ही नहीं है।

सुखदा—लेकिन मेरे स्वप्न ही तो मेरा बल है।

यशपाल—हो सकता है, किन्तु तुम्हारा निर्बलता भी तुम्हारे स्वप्न ही हैं। देखो, बात यह है कि उन्होंने पुलिस के

सामने यह कहा है कि बाँकेबिहारी को उन्होंने आश्रय दिया ही नहीं था; वह सिर्फ़ उनके पास आया था और वे उससे अन्य लोगों के समान बातें कर रहे थे। वे यह जानते ही न थे कि बाँकेबिहारी क्रांतिकारी है। यही वे अदालत में कहेंगे।

सुखदा—सच बात भी यही है।

यशपाल—ज़रूर। फिर जब तुम्हें विश्वास है कि सत्य की हमेशा जय होती है, तब तुम्हें गरीबदास जी के छूटने में शक ही क्यों होता है?

सुखदा—(कुछ ठहर कर) और यदि वे न छूटे तो? जब उन्हें पुलिस गिरफ्तार कर ले जाने लगी तब मैं तो भीतर थी, उस स्थान पर थी ही नहीं, पर उन्होंने जो कुछ अपने नौकर से कहा था वह मुझे सुनायी ज़रूर दिया था।

यशपाल—क्या कहा था?

सुखदा—तुम जानते हो कि उनके नाती मुन्ना को छोड़कर उनके घर में कोई नहीं है?

यशपाल—हाँ।

सुखदा—यह भी तुम जानते हो कि मुन्ना को वे कितना प्यार करते हैं?

यशपाल—मैं क्या, सारा शहर जानता है। इतना बड़ा लड़का होने पर भी उसे गोद में लादे-लादे सारे नगर में घूमते रहते हैं।

सुखदा—उनका अंतिम वाक्य जो उन्होंने नौकर से कहा था, यह था कि 'मुन्ना को अनाथालय में भेज देना।' (आँखों में आँसू भर कर) आह ! जो अगणित अनाथों को आश्रय देता था, उसका ही पौत्र हम लोगों के अपराध से अनाथालय·····

यशपाल—देखो, अब तुम फिर उत्तेजित हो रही हो, फिर उत्तेजित हो रही हो।

[सुखदा चुप हो जाती है। दोनों फिर कुछ देर तक चुप रहते हैं।]

सुखदा—क्यों, अगर·····

[सिरिश्तेदार का प्रवेश।]

यशपाल—(धीरे से) अच्छा, अब चुप रहो, देखो लोगों का आना शुरू हो गया।

सिरिश्तेदार—(आगे बढ़ कर यशपाल से हाथ मिलाते हुए) अच्छा आप हैं। कितनी देर हुई आपको आये ?

यशपाल—(जो खड़ा हो गया है) अभी-अभी आया हूँ।

सिरिश्तेदार—बाई साहबा भी आयी हैं ?

यशपाल—हाँ, आप जानते हैं कि गरीबदास जी का हम लोगों का कितना घनिष्ठ संबंध है।

सिरिश्तेदार—इसी बहाने आज आप कचहरी आ गये, (हंसते हुए) नहीं तो भला कचहरी से अब आपका क्या संबंध ?

यशपाल—(मुस्कुराते हुए) हाँ, यह तो है ही, पर आप लोगों से तो संबंध है।

सिरिश्तेदार—वह थोड़े ही छूट सकता है, लेकिन यशपालजी, (धीरे-धीरे) माफ़ कीजिए, हम लोगों पर तो गुलामी इस तरह सवार हो गयी है कि आपके पास आने तक में डर लगता है। क्या कहूँ ? (और भी धीरे-धीरे) आप लोग धन्य हैं, जो देश के लिए इतना त्याग कर रहे हैं।

[सिरिश्तेदार जाकर अपने स्थान पर बैठ जाता है। यशपाल भी अपनी कुरसी पर बैठता है। धीरे-धीरे अनेक वकील तथा अन्य व्यक्ति आते हैं। कोई यशपाल को प्रणाम करते हैं, कोई उससे हाथ मिलाते हैं, सभी उसके प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करते हैं। कई लोग मुखदा को भी प्रणाम करते हैं, कुछ ही देर में कचहरी में खासी भीड़ हो जाती है। मजिस्ट्रेट और प्रासीक्यूटिंग इन्स्पेक्टर का प्रवेश। प्रासीक्यूटिंग इन्स्पेक्टर के हाथ में बहुत से कागज़ हैं मजिस्ट्रेट के आने पर सब लोग खड़े हो जाते हैं। मजिस्ट्रेट यशपाल को देखकर सबसे पहले सीधा उसके पास जाता है।]

मजिस्ट्रेट—(यशपाल से हाथ मिलाते हुए, धीरे से) बड़े भाग्य मेरी अदालत के कि आज आप यहाँ आये।

यशपाल—(हँसते हुए) वकील की हैसियत से तो अनेक बार आया हूँ, लेकिन आज तो केवल दर्शक की हैसियत से आया हूँ। आप जानते हैं गरीबदास जी से हम लोगों का कितना घनिष्ट संबंध है।

मजिस्ट्रेट—(और भी धीरे-धीरे) देश के लिए इस त्याग करने से, यशपालजी, आपकी हैसियत अब वकील की अपेक्षा बहुत बढ़ गयी है।

यशपाल—यह सब आप लोगों की कृपा है।

[मजिस्ट्रेट अन्य कुछ लोगों से मिल कर अपनी कुरसी पर बैठता है। सब लोग यथा स्थान बैठ जाते हैं। सिरिश्तेदार कागज मजिस्ट्रेट की टेबिल पर रखता है।]

मजिस्ट्रेट—(चश्मा लगाकर कागज़ों को देखते हुए) पंडित गरीबदास आ गये हैं।

प्रासीक्यूटिङ्ग इंसपेक्टर—जी हाँ, अभी पेश करता हूँ।

[प्रासीक्यूटिंग इन्स्पेक्टर का प्रस्थान और गरीबदास तथा दो कांस्टेबलों के साथ पुनः प्रवेश। गरीबदास के एक हाथ में हथकड़ी है, परन्तु उसके मुख पर उसकी स्वाभाविक शांति विराज रही है। अनेक लोग खड़े होकर गरीबदास को प्रणाम करते हैं; यशपाल और सुखदा भी। सुखदा के नेत्रों में आँसू आ ही जाते हैं। गरीबदास मुस्कुराते हुए प्रणामों का उत्तर देता है। गरीबदास को अभियुक्त के कटघरे में खड़ा किया जाता है।]

मजिस्ट्रेट—पंडितजी के बैठने के लिए एक कुरसी रख दो।

[कटघरे में ही एक कुरसी रख दी जाती है। गरीबदास उस पर बैठ जाता है।]

मजिस्ट्रेट—(प्रासीक्यूटिंग इन्स्पेक्टर से) आप अपना बयान शुरू कीजिए।

प्रासीक्यूटिंग इन्स्पेक्टर—(मजिस्ट्रेट के तख्त के सामने, कटघरे के सम्मुख खड़े होकर)·····मुताबिक बाँकेबिहारी नामक आदमी मुलज़िम ज़ाहिर किया गया था। बाँकेबिहारी भागा हुआ था और उसे गिरफ़्तार कराने वाले के लिए सरकार ने एक हजार रुपया इनाम देने की ज़ाहिरात की थी। बाँकेबिहारी ताजीरात हिद दफा ३६५, १२२, और १२१ के मुताबिक मुलज़िम है और उसके गिरफ़्तार कराने वाले को इनाम दिया जायगा, इसकी ख़बर अखबारों में छप चुकी थी; साथ ही स्टेशनों तथा सभी बड़े-बड़े शहरों की ख़ास-ख़ास जगहों पर बाँकेबिहारी की तस्वीर लगवा दी गयी थी। बाँकेबिहारी के मुलज़िम ज़ाहिर करने के मुतल्लिक जो काग़ज़ात हैं, वे मैं आपके सामने पेश करता हूँ। (कुछ काग़ज़ मजिस्ट्रेट की टेबिल पर रखता है।) उसी बाँकेबिहारी को पंडित गरीबदास ने अपने मकान में ठहराया। ता० २० नवंबर की शाम को पुलिस को इसकी ख़बर मिली। किसी तरह, जो कि पुलिस को अब तक नहीं मालूम हो सका है, पंडित गरीबदास को भी इस बात की ख़बर हो

गयी कि पुलिस बाँकेविहारी को गिरफ़्तार करने के लिए उनके मकान को आ रही है। यह खबर पाते ही पंडित गरीबदास ने बाँकेबिहारी को फ़ौरन भागना चाहा। उसी वक्त पुलिस वहाँ पहुँच गयी और पंडित गरीबदास के मकान की खिड़की से भागते हुए बाँकेबिहारी को गिरफ़्तार किया। पंडित गरीबदास ने बाँकेबिहारी को जगह देकर, उसे भागने में मदद करके ताजीरात हिंद की दफ़ा १३० और २१२ के मुताबिक कुसूर किया है और इसीलिए आपकी अदालत में पंडित गरीबदास पर यह मुकद्दमा पेश किया जा रहा है। अब मैं अपने इस बयान की ताईद में गवाह पेश करता हूँ। (चपरासी से) सब इन्स्पेक्टर अजीत-सिंह को बुलाओ।

चपरासी—(दरवाज़े के निकट जाकर जोर से) सब-इन्स्पेक्टर अजीतसिंह साहब !

[सब-इन्स्पेक्टर का प्रवेश। वह अदालत में आकर मजिस्ट्रेट को फ़ौजी ढंग से सलाम करता और प्रासिक्यूटिंग इन्स्पेक्टर के सामने खड़ा हो जाता है।]

मजिस्ट्रेट—कहिए, ईमान से सच कहेंगे।

सब-इन्स्पेक्टर—ईमान से सच कहूँगा।

[आगे प्रासीक्यूटिंग इन्स्पेक्टर उससे प्रश्न पूछता है और मजिस्ट्रेट लिखता जाता है।]

मजिस्ट्रेट—आपका नाम ?

सब-इन्स्पेक्टर—अजीतसिंह ।

मजिस्ट्रेट—पिता का नाम ?

सब-इन्स्पेक्टर—विजयसिंह ।

मजिस्ट्रेट—जाति ?

सब-इन्स्पेक्टर—ठाकुर ।

मजिस्ट्रेट—पेशा ?

सब-इन्स्पेक्टर—नौकरी । पुलिस सब-इन्स्पेक्टर ।

मजिस्ट्रेट—रहने का स्थान ?

सब-इन्स्पेक्टर—यही शहर ।

प्रासीक्यूटिङ्ग इन्स्पेक्टर—इस मामले में आप जो कुछ जानते हों बताइए ।

सब-इन्स्पेक्टर—ता० २० नवंबर को कोतवाली में बाँकेबिहारी के पंडित गरीबदास वैद्य के घर में रहने की पक्की खबर मालूम हुई । उसी वक्त सिटी साहब के हुक्म से मैं और मेरे साथ चार कांस्टेबिल बाँकेबिहारी और उसे घर में छिपाने की वजह पंडित गरीबदास दोनों को गिरफ़्तार करने को भेजे गये । हम लोग पंडितजी के मकान दाखिल हुए और ज्योंही हम पंडितजी के बैठकखाने में पहुँचे त्यों ही मैंने देखा कि बाँकेबिहारी एक खिड़की से भाग रहा है । हम लोगों ने फ़ौरन, लेकिन मुश्किल से, बांकेबिहारी को गिरफ़्तार किया और फिर पंडितजी को भी गिरफ़्तार किया ।

प्रासीक्यूटिङ्ग इन्स्पेक्टर—क्या उस वक्त पंडितजी के बैठकखाने में और कोई था ?

सब-इन्स्पेक्टर—और कोई नहीं था।

प्रासीक्यूटिङ्ग इन्स्पेक्टर—जब आपने पंडितजी को गिरफ़्तार किया तब उन्होंने कुछ कहा ?

सब-इन्स्पेक्टर—जी हाँ, उन्होंने पूछा कि मुझे क्यों गिरफ़्तार करते हो ?

प्रासीक्यूटिङ्ग इन्स्पेक्टर—आपने क्या कहा ?

सब-इन्स्पेक्टर—यही कि बाँकेबिहारी को अपने घर में रखने के लिए।

प्रासीक्यूटिङ्ग इन्स्पेक्टर—इस पर उन्होंने कुछ कहा ?

सब-इन्स्पेक्टर—जी हाँ, कि मैं बाँकेबिहारी को जानता ही नहीं था कि यह कौन है ?

प्रासीक्यूटिङ्ग इन्स्पेक्टर--फिर ?

सब-इन्स्पेक्टर—हम लोगों ने पंडितजी के इस कहने पर कुछ ख़याल नहीं किया और उनको भी गिरफ़्तार कर कोतवाली ले आये।

प्रासीक्यूटिङ्ग इन्स्पेक्टर—पंडित गरीबदास ने और कुछ नहीं कहा ?

सब-इन्स्पेक्टर—नहीं, और कुछ नहीं। (कुछ ठहर कर

सोचते हुए) हाँ, चलते-चलते उन्होंने अपने नौकर को पुकार कर एक बात कही थी।

प्रासीक्यूटिङ्ग इन्स्पेक्टर—क्या ?

सब-इन्स्पेक्टर—कि मेरे नाती मुन्ना को अनाथालय में भेज देना।

[दर्शकों में अनेक लंबी साँस लेते हैं। सुखदा के नेत्रों में आँसू भर आते हैं।]

प्रासीक्यूटिंग इन्स्पेक्टर—(अदालत से) मुझे इनसे अब और कुछ नहीं पूछना है।

मजिस्ट्रेट—(गरीबदास से) आप इनसे कुछ पूछना चाहते हैं ?

गरीबदास—(खड़े होकर) जी नहीं, मुझे जो कुछ कहना है, मैं अन्त में कह दूँगा। (पुनः बैठ जाता है।)

[सब-इंसपेक्टर उसी ढङ्ग से सलाम कर पीछे हट कर एक बेंच पर बैठ जाता है।]

प्रासीक्यूटिङ्ग इंसपेक्टर—(चपरासी से) हेड कांस्टेबिल लियाकत हुसेन को बुलाओ।

चपरासी—(दरवाज़े के निकट जाकर जोर से) हेड कांस्टेबिल लियाकत हुसेन !

[हेडकांस्टेबिल का प्रवेश। वह भी फौजी ढङ्ग से सलाम कर प्रासीक्यूटिङ्ग इंसपेक्टर के सामने खड़ा हो जाता है।]

मजिस्ट्रेट—कहो, ईमान से सच कहेंगे।

हेडकांस्टेबिल—ईमान से सच कहूँगा।

मजिस्ट्रेट—तुम्हारा नाम ?

हेडकांस्टेबिल—लियाकत हुसेन।

मजिस्ट्रेट—बापका नाम ?

हेडकांस्टेबिल—फैयाज़ हुसेन।

मजिस्ट्रेट—जाति ?

हेडकांस्टेबिल—मुसलमान।

मजिस्ट्रेट—पेशा ?

हेडकांस्टेबिल—नौकरी।

मजिस्ट्रेट—सकूनत ?

हेडकांस्टेबिल—इसी शहर में रहता हूँ।

प्रासीक्यूटिङ्ग इंसपेक्टर—इस मामले में तुम जो कुछ जानते हो बतलाओ।

हेडकांस्टेबिल—ता० २० नवम्बर को सिटी साहब ने मुझे चार कांस्टेबिलों के साथ सब इंसपेक्टर अजीत सिंह साहब के साथ जाने का हुक्म दिया। हम लोग गरीबदास के मकान पहुँचे और वहाँ हम लोगों ने बाँकेबिहारी और पंडित साहब को गिरफ़्तार किया।

प्रासीक्यूटिङ्ग इंसपेक्टर—पंडित गरीबदास उस वक्त कहाँ थे ?

हेडकांस्टेबिल—अपने बैठकखाने में, हुज़ूर।

प्रासीक्यूटी इंसपेक्टर—और वहाँ पर कौन था ?

हेडकांस्टेबिल—पंडित साहब और बाँकेबिहारी को छोड़ कर और कोई न था ?

प्रासीक्यूटिङ्ग इंसपेक्टर—ये दोनों साहबान क्या कर रहे थे ?

हेडकांस्टेबिल—पंडित साहब बैठे हुए थे। बाँकेबिहारी एक खिड़की से भाग रहा था।

प्रासीक्यूटिङ्ग इंसपेक्टर—(अदालत से) मैं इनसे जो कुछ पूछना चाहता था, पूछ चुका।

मजिस्ट्रेट—(गरीबदास से) आपको कुछ पूछना है ?

गरीबदास—(खड़े होकर) जी नहीं। (पुनः बैठ जाता है।)

[हेड कांस्टेबिल उसी ढङ्ग से सलाम कर पीछे हट एक ओर खड़ा हो जाता है।]

मजिस्ट्रेट—(प्रासीक्यूटिङ्ग इंसपेक्टर से) और कोई गवाह आपको पेश करना है ?

प्रासीक्यूटिङ्ग इंसपेक्टर—जी नहीं।

मजिस्ट्रेट—(गरीबदास से) आप अपना बयान दीजिए, पंडित जी।

[पंडित गरीबदास खड़ा हता है और प्रासीक्यूटिङ्ग इंसपेक्टर बैठ जाता है।]

गरीबदास—महाशय, मैं इस सम्बन्ध में केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि बाँकेबिहारी कौन है, इसे मैं नहीं जानता। जिस प्रकार अन्य अनेक रोगी और अनाश्रित मेरे घर आने की कृपा किया करते हैं, उसी प्रकार बाँके-बिहारी आये थे। मैंने तो उन्हें आश्रय तक न दिया था और बातचीत आरम्भ ही की थी कि इतने में पुलिस वहाँ पर आ पहुँचो और उन्हें तथा मुझे गिरफ़्तार कर लिया। मैं यदि बाँकेबिहारी को जान लेता तो भी मैं क्या करता, यह मैं इस समय नहीं कह सकता, क्योंकि मनुष्य के हृदय में भिन्न-भिन्न परिस्थिति में भिन्न-भिन्न भाव उठते हैं। यों तो मैं भूखे-प्यासे और निराश्रित को अन्न-जल और आश्रय देना शत्रु-मित्र अथवा अन्य किसी प्रकार के भेद-भाव से परे एक उच्च, अत्यन्त उच्च, बात मानता हूँ।

[गरीबदास बैठ जाता है।]

मजिस्ट्रेट—(कुछ सोचकर गरीबदास से) फिर बाँके-बिहारी पुलिस के आने के पहले ही आपके मकान से भाग कैसे रहा था ?

गरीबदास—(खड़े होकर) इस सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं कहना चाहता। (पुनः बैठ जाता है।)

सुखदा—(यशपाल से धीरे से) देखो····· (घबराकर खड़ी हो कुछ कहना चाहती है। यशपाल उसे जबरदस्ती दाब कर बिठाता हुआ उसके कान में कुछ कहता है। वह छटपटाती

हुई बैठ जाती है और बारम्बार लम्बी साँस लेती है। उसका मुख एक दम उत्तेजित हो उठता है।)

मजिस्ट्रेट—(काग़ज़ों को देखते और कुछ लिखते हुए गरीबदास से) मैं आप पर चार्ज लगाता हूँ।

सुखदा—(एकाएक शीघ्रता से झटका देकर यशपाल के हाँथों को हटाते हुए) हृदय के इस तूफ़ान के समय बाहर की शान्ति असम्भव है। ओह! हृदय का तूफ़ान क्या, यह तो अन्तरात्मा का भूकम्प है! भूकम्प! (आगे बढ़कर मजिस्ट्रेट से) आप गरीबदास पर चार्ज न लगाइए, मजिस्ट्रेट साहब! उनका नहीं, अपराध मेरा है। मैं सारी घटना आपको बताती हूँ।

[कचहरी में सन्नाटा छा जाता है। सब लोग आश्चर्य-चकित होकर सुखदा की ओर देखने लगते हैं। मजिस्ट्रेट भी भौचक्का सा रह जाता है। यशपाल काँपने लगता है!]

सुखदा—(मजिस्ट्रेट के तख्त के सामने के कटघरे के निकट जाकर साहस के साथ) गरीबदास जी का कहना सर्वथा सत्य है। बाँके बिहारी को ये बिलकुल नहीं जानते थे। वह उनके पास अन्य रोगियों और निराश्रितों के समान गया था, परन्तु मुझे यह बात एक विश्वासनीय सूत्र से मालूम हो गयी थी कि बाँकेबिहारी क्रान्तिकारी है, वह गरीबदास जी के यहाँ गया है और पुलिस उसे गिरफ़्तार करने के लिए आ रही है। मैं तत्काल गरीबदास जी के मकान में पहुँची और बाँकेबिहारी को इसकी सूचना देकर गरीबदास

जी के मकान के भीतरी भाग में चली गयी। बाँकेबिहारी उठ कर खिड़की से भाग रहा होगा, उस वक्त पुलिस पहुँची होगी। बाँकेबिहारी को भगाने में मेरा दोष है। गरीबदास जी निर्दोष, सर्वथा निर्दोष हैं। मैं दोषी हूँ। आप उन्हें नहीं, मुझे दंड दीजिए मैं दंड भोगने के लिए तैयार हूँ।

मजिस्ट्रेट—(आश्चर्य से) लेकिन यह आपको कैसे मालूम हुआ कि बाँकेबिहारी क्रांतिकारी है, वह गरीबदास जी के मकान में गया है और पुलिस उसे गिरफ्तार करने के लिए जा रही है।

सुखदा—इस संबंध में मैं कुछ नहीं कहना चाहती।

यशपाल—(खड़े होकर काँपते हुए) जनाब, इनका दिमाग़ आजकल कुछ खराब हो गया है। ये पागलपन में बक रह है।

सुखदा—नहीं, साहब, मैं बिलकुल नीरोग हूँ। आप किसी भी डाक्टर से मेरी जाँच करा सकते है। मैं जो कुछ कह रही हूँ वह सत्य, सर्वथा सत्य है। गरीबदास जी को आप मुक्त कीजिए और मुझे दंड दीजिए।

गरीबदास—(खड़े होकर) परन्तु, मजिस्ट्रेट साहब···

मजिस्ट्रेट—(बीच ही में) ठहरिए, ठहरिए, इस मामले में तो बहुत से झगड़े मालूम पड़ते हैं। मैं इसकी एक सप्ताह के लिए पेशी·····

यवनिका

समाप्त